दुनिया नष्ट नहीं होगी श्रेष्ठतर बनेगी

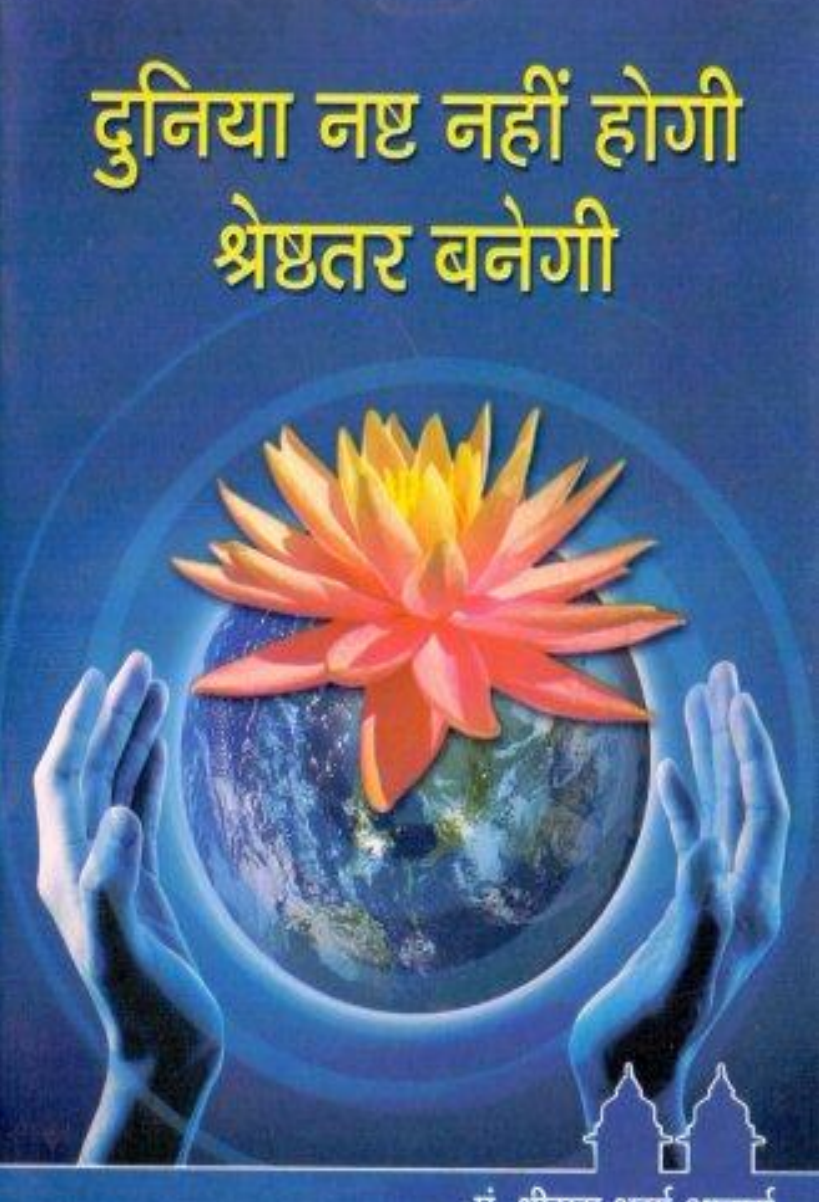

दुनिया नष्ट नहीं होगी, श्रेष्ठतर बनेगी

संकलन-संपादन

ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)

शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

सन् 2011

मूल्य- 14.00 रुपये

विषय सूची

१. युगऋषि की भविष्यवाणी सतयुग की वापसी ---------- ०५

२. संघर्ष और सृजन का संयुक्त मोर्चा ---------- ०९

३. ध्वंस दबेगा, सृजन उभरेगा ---------- १७

४. दोनों तरह के युद्धों पर लगेगा अंकुश ---------- २३

५. परिवर्तन होना है राजतंत्र में भी, अर्थ तंत्र में भी ---------- २८

६. सत्ता लोलुप, धन लोलुप समय पर चेत जायें ---------- ३३

७. विश्व का नया स्वरूप उभरेगा ---------- ३९

८. जनसंख्या की समस्या भी सुलझानी होगी ---------- ४६

९. नारी की प्रतिभा उभरेगी-क्षमता निखरेगी ---------- ५०

१०. कैसा होगा प्रज्ञायुग का समाज ? ---------- ५५

पूर्व निवेदन

युगऋषि (वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० आचार्य श्रीराम शर्मा) ने मनुष्य मात्र को उज्ज्वल भविष्य तक ले जाने वाली दैवी योजना 'युग निर्माण योजना' भी घोषणा तो की ही, उसे एक प्रकार प्रखर जन आन्दोलन का स्वरूप भी प्रदान किया। भारत द्वारा पुनः विश्वगुरु की भूमिका निभाने के गरिमामय स्तर तक पहुँचने की बात स्वामी विवेकानन्द एवं योगी श्री अरविन्द आदि ने अपने वक्तव्यों में बार-बार दोहराई है। युगऋषि ने उन्हीं के कथन के अनुरूप उस दिव्य योजना के अगले चरणों के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक स्वरूपों का खुलासा किया है। जन-जन को उसी ईश्वरीय योजना में भागीदारी लेने-निभाने के लिए आमंत्रित तथा प्रेरित किया है।

महापुरुषों के उक्त कथन को जानते हुए भी बड़ी संख्या में नर-नारी निकट भविष्य में किसी विनाशलीला की संभावनाओं से भयभीत देखे जाते हैं। उनका भय अकारण भी नही हैं। बिगड़ते पर्यावरण के कारण बढ़ता भूमण्डलीय तापमान (ग्लोबल वार्मिंग) अनेक प्राकृतिक भीषण विपदाओं की ओर संकेत कर रहा है। मनुष्य में बढ़ते अहंकार के कारण बढ़ रहे छोटे बड़े विग्रहों से लेकर विश्वयुद्ध-अणुयुद्ध तक की संभावनाएँ कम खतरनाक नही हैं। मनुष्य की संकीर्ण स्वार्थपरता तथा अनगढ़ सुख लिप्सा के कारण बढ़ते अपराध मनुष्य जाति को कहाँ ले जाकर पटकेगें? यह चिन्ता हर समझदार के मन में उठती है, तो उसे निराधार भी तो नहीं कहा जा सकता। माया सभ्यता की कालसारिणी (मायान्स कैलेण्डर) को लेकर उभरी अनगढ़ चर्चाओं ने उक्त भय को और भी बढ़ा दिया है।

भय की दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती है। एक यह कि विनाश या दुर्घटना के भय से व्यक्ति जागरूक होकर उस दिशा में समुचित सावधानी बरतने लगता है। नकारात्मक प्रतिक्रिया यह होती है कि भयभीत व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। हाथ-पैर फूलने लगते है तथा वह पहले ही अधमरा जैसा हो जाता है। समझदारी इसी में है कि भय की नकारात्मक प्रतिक्रिया से बचा जाय तथा उसकी सकारात्मक प्रतिक्रिया का लाभ उठाया जाय।

प्रस्तुत पुस्तक में युग परिवर्तन की विनाशकारी गतिविधियों के बीच उभरती उज्ज्वल भविष्य की सुनिश्चित संभावनाओं को युगऋषि ने बड़ी स्पष्टता से उभारा है। युगऋषि के जीवन का उद्देश्य ही युग निर्माण योजना को सार्थक रूप देना रहा है। इस योजना में त्रिवेणी की तरह तीन धाराएँ है। **पहली** धारा है- ईश्वरीय व्यवस्था, **दूसरी** धारा है- ऋषियों द्वारा सूक्ष्म जगत का ताना-बाना तथा **तीसरी** धारा है- भावनाशील मनुष्यों का लयबद्ध सामूहिक पुरुषार्थ।

युगऋषि ने अपने वक्तव्य में यह तथ्य स्पष्ट किया है कि परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं, किन्तु ईश्वरीय व्यवस्था तथा ऋषि तन्त्र के ताने-बाने को देखते हुए उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित है। उसके साथ तीसरी धारा सज्जनों का सत्पुरुषार्थ और जोड़ा जाना है। मनुष्यों के सत्पुरुषार्थ और सहकार को माध्यम बनाकर वह दिव्य योजना सहजता से प्रत्यक्ष जगत में अवतरित हो जायेगी।

युगऋषि ने अपनी शरीर यात्रा (सितम्बर १९११- जून १९९०) के अन्तिम चरण में सन् ८४ से ८६ से बीच सूक्ष्मीकरण साधना के नाम से विशिष्ट साधना प्रयोग किया था। उस दौरान उन्होंने परिस्थिति जनित तमाम अटकलों को नकारते हुए पूर्व महापुरुषों के कथन को बल देते हुए अखण्ड ज्योति पत्रिका में तमाम लेख प्रकाशित किए थे। उन्हीं लेखों में से संकलन-सम्पादन करके यह पुस्तिका तैयार की गई हैं। ऐसा विश्वास है कि जो विचारशील जिज्ञासुजन इसको पढ़ेगें, वे तमाम असमंजसों से उबरकर कुछ सकारात्मक उत्साह अपने अन्दर अनुभव अवश्य करेगें। मनुष्य की जिन भूलों के कारण विनाश की संभावनाएँ उभरी है, उन भूलों को अपनी शक्तिभर ठीक करने और नवसृजन की सुनिश्चित ईश्वरीय योजना में भागीदारी का उत्साह उनमें उभरेगा। वे इस महत्त्वपूर्ण समय का समुचित लाभ स्वयं भी उठा सकेगें तथा अपने प्रभाव क्षेत्र वालो को भी लाभान्वित करने का श्रेय सौभाग्य प्राप्त कर सकेगें।

युग ऋषि के कथन लेखन को अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य जो अंश जोड़े गये है उन्हे कोष्ठक में अथवा भिन्न टाइप में पाद टिप्पणियों (फुट नोट्स) के रूप में दिया गया है।

-प्रकाशक

१. युगऋषि की भविष्यवाणी
सतयुग की वापसी

आसुरी प्रपंच- पुरातन काल में एक अपराजित-हेय-दुर्दान्त दैत्य कृतवीर्य के आतंक से दसों दिशाओं में हाहाकार मच गया था। वह महाप्रतापी और वरदानी था। देवता और मनुष्यों में से कोई उससे लोहा ले सकने की स्थिति में नहीं था। सभी असहाय बने जहाँ-तहाँ अपनी जान बचाते-फिरते थे। उपाय ब्रह्माजी ने सोचा। भगवान् शंकर को एक प्रतापी पुत्र उत्पन्न करने के लिए सहमत किया। वही इस प्रलय दूत से लड़ सकता था। कार्तिकेय (स्वामी कार्तिक) जन्मे। अग्नि ने उन्हें गर्भ में रखा। कृतिकाओं ने पाला और इस योग्य बनाया कि वह अकेला ही चुनौती देकर कृतवीर्य को परास्त कर सके। ऐसा ही हुआ भी और संकट टलने का सुयोग आया था।

इस पौराणिक उपाख्यान में कितना सत्य और कितना अलंकार है यह कहना कठिन है; पर प्रस्तुत विभीषिकाएँ सचमुच ही ऐसी हैं, जिन्हें कृतवीर्य के आतंक तुल्य ठहराया जा सके। जो सामने हैं, उनकी परिणति महाप्रलय होने जैसी मान्यता हर विचारशील की बनती जा रही है।

अणु युद्ध की विभीषिका किसी भी दिन साकार हो सकती है और इस धरती पर विषाक्तता के अतिरिक्त और कुछ बचने के आसार नहीं हैं। बढ़ती जनसंख्या के लिए निर्वाह साधन अगले दिनों भी मिलते रहेंगे, इसकी कोई संभावना नहीं है। अन्न, जल, खनिज ही नहीं, शुद्ध वायु तक मिलना संभव न रहेगा और लोग भूख, प्यास, घुटन से संत्रस्त होकर दम तोड़ेंगे। मर्यादाओं को तोड़-मरोड़ डालने में निरत व्यक्ति को स्वास्थ्य, संतोष, सुरक्षा, सम्पदा सभी से वंचित होना पड़ेगा। अनाचार की मान्यता देने वाले समाज में स्नेह, सहकार और न्याय के लिए क्या स्थान रहने वाला है? विशृंखलित और विग्रही समाज का कोई भी सदस्य चैन से न रह सकेगा। इन परिस्थितियों का विवेचन हर क्षेत्र के मूर्धन्य विचारशील कर रहे हैं और एक स्वर में इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि समय रहते न चेता गया, तो मनुष्य जाति को सामूहिक आत्महत्या के लिए बाधित होना पड़ेगा। इस प्रसंग में शास्त्रकार, दिव्यदर्शी, ज्योतिषी, भविष्यवक्ता भी अपने-अपने तर्क प्रमाण प्रस्तुत करते

हुए यह घोषित करते हैं कि दुर्दिनों की विपत्ति बेला अब कुछ ही दिनों में आ धमकने वाली है। बढ़ते तापमान से ध्रुव पिघलने, समुद्र उफनने और हिम युग वापस लौटने जैसी चर्चाएँ आये दिन सुनने को मिलती रहती हैं। कोई चाहे तो इन परिस्थितियों की कृतवीर्य महादैत्य के समय से तुलना कर सकता है, जो किसी के भी झुकाए न झुक पा रहा है।

सुनिश्चित दिव्य योजना– ऐसे समय में अध्यात्म शक्ति ही कारगर होती रही है। विश्वामित्र का यज्ञ जिसकी रक्षा करने राम, लक्ष्मण गये थे, सामयिक आतंक को टालने की पृष्ठभूमि बनाने के लिए ही किया गया था। दधीचि के अस्थिदान के पीछे भी यही उद्देश्य था। कार्तिकेय जैसी अध्यात्म क्षमता उत्पादित करने के प्रयत्नों के साथ किसी प्रकार संगति बिठानी हो, तो प्रज्ञा परिजनों द्वारा संचालित प्रज्ञा पुरश्चरण से बैठ सकती है, जिसमें चौबीस लाख व्यक्ति एक समय पर एक विधान से वातावरण संशोधन की साधना करते हैं। इसी की एक कड़ी इस अनुभव प्रयास के साथ जुड़ती है, जिसमें एकान्तवास के साथ उग्र तपश्चर्या[१] (सूक्ष्मीकरण साधना) करने का निर्धारण है। इसकी सुखद परिणति पर हमें उतना ही विश्वास है, जितना अपनी आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व पर।

दृश्य और प्रत्यक्ष परिस्थितियों का विश्लेषण करने वालों और निष्कर्ष निकालने वालों की तुलना में हमारे आभास इन दिनों सर्वथा भिन्न हैं। लगता है कि एक-एक करके सभी संकट टल जायेंगे। अणुयुद्ध नहीं होगा और यह पृथ्वी भी वैसी बनी रहेगी, जैसी अब है। प्रदूषण को मनुष्य न सँभाल सकेगा, तो अंतरिक्षीय प्रवाह उसका परिशोधन करेंगे। जनसंख्या जिस तेजी से अभी बढ़ रही है, एक दशाब्दी में वह दौड़ आधी घट जायेगी। रेगिस्तानों और ऊसरों को उपजाऊ बनाया जायेगा और नदियों को समुद्र तक पहुँचने से पूर्व इस प्रकार बाँध लिया जायेगा कि सिंचाई तथा अन्य प्रयोजनों के लिए पानी की कमी न पड़े।

१– जिस प्रकार आज की भीषण परिस्थितियों की उपमा राक्षस क्रतवीर्य से दी गई है, उसी प्रकार इस पुरश्चरण युक्त प्रचण्ड साधना के उपमा कार्तिकेय जैसी असुर विनाशक ऊर्जा पैदा करने वाले तप पुरुषार्थ के समकक्ष आंका गया है।

प्रजातंत्र के नाम पर चलने वाली धाँधली में कटौती होगी। वोट उपयुक्त व्यक्ति ही दे सकेंगे। अफसरों के स्थान पर पंचायतें शासन संभालेंगी और जन सहयोग से ऐसे प्रयास चल पड़ेंगे कि जिनकी इन दिनों सरकार पर ही निर्भरता रहती है। नया नेतृत्व उभरेगा। इन दिनों धर्म क्षेत्र के और राजनीति के लोग ही समाज का नेतृत्व करते हैं। अगले दिनों मनीषियों की एक नई बिरादरी का उदय होगा, जो देश, जाति, वर्ग आदि के नाम पर विभाजित वर्तमान समुदाय को विश्व नागरिक स्तर की मान्यता अपनाने, विश्व परिवार बनाकर रहने के लिए सहमत करेंगे। तब विग्रह नहीं, हर किसी पर सृजन और सहकार सवार होगा।

विश्व परिवार की भावना दिन-दिन जोर पकड़ेगी और एक दिन वह समय आवेगा, जब विश्व राष्ट्र आबद्ध विश्व नागरिक बिना आपस में टकराये प्रेमपूर्वक रहेंगे। मिल-जुलकर आगे बढ़ेंगे और वह परिस्थितियाँ उत्पन्न करेंगे, जिसे पुरातन सतयुग के समतुल्य कहा जा सके।

इसके लिए नवसृजन का उत्साह उभरेगा। नये लोग नये परिवेश में आगे आयेंगे। ऐसे लोग जिनकी पिछले दिनों कोई चर्चा तक न थी, वे इस तत्परता से बागडोर सम्भालेंगे, मानों वे इसी प्रयोजन के लिए कहीं ऊपर आसमान से उतरे हों, या धरती फोड़कर निकले हों।

यह हमारे स्वप्नों का संसार है। इनके पीछे कल्पनाएँ अटकलें काम नहीं कर रही हैं, वरन् अदृश्य जगत् में चल रही हलचलों को देखकर इस प्रकार का आभास मिलता है, जिसे हम सत्य के अधिकतम निकट देख रहे हैं।

मरणोन्मुख प्रवाह में इस प्रकार आमूल-चूल परिवर्तन होने के पीछे उन दैवी शक्तियों का हाथ है, जो दृश्यमान न होते हुए भी वातावरण बदल रही हैं और लोक चिन्तन में अध्यात्म तत्त्वों का समावेश कर रही हैं। महान कार्यों के लिए किसी जादुई कलेवर वाले लोग नहीं होते। अपने जैसे ही हाड़-माँस के लोग दृष्टिकोण रुझान एवं पराक्रम की दिशा बदलते हैं, तो वे कुछ से कुछ बन जाते हैं।

रीछ वानरों में न कोई विशेष योग्यता थी, न क्षमता। दैवी प्रवाह के साथ-साथ चल पड़ने के कारण वे सब कुछ से कुछ हो गये थे। हनुमान, अंगद और नल-नील जैसों ने जो पुरुषार्थ किया, उन पर सहज विश्वास ही

नहीं होता; पर जो आत्मशक्ति की। दिव्य चेतना की क्षमता को जानते हैं, उन्हें यह विश्वास करने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती कि टिटहरी का सत्संकल्प[1] समुद्र को सुखाने में अगस्त्य मुनि का सहयोग आमंत्रित कर सकता है और असंभव लगने वाला, अण्डे लौटने जैसा कार्य संभव हो सकता है।

दूसरों को विनाश दीखता है, सो ठीक है। परिस्थितियों का जायजा लेकर निष्कर्ष निकालने वाली बुद्धि को भी झुठलाया नहीं जा सकता। विनाश की भविष्यवाणियों में सत्य भी है और तथ्य भी। पर हम अपने आभास और विश्वास को क्या कहें, जो कहता है कि समय बदलेगा। घटाटोप की तरह घुमड़ने वाले काले मेघ किसी प्रचण्ड तूफान की चपेट में आकर उड़ते हुए कहीं से कहीं चले जायेंगे।

सघन तमिस्रा का अंत होगा। उषाकाल के साथ उभरता हुआ अरुणोदय अपनी प्रखरता का परिचय देगा। जिन्हें तमिस्रा चिरस्थाई लगती हो, वे अपने ढंग से सोचें, पर हमारा दिव्य दर्शन उज्ज्वल भविष्य की झाँकी करता है। लगता है इस पुण्य प्रयास में सृजन की पक्षधर देवशक्तियाँ प्राण-प्रण से जुट गयी हैं। इसी सृजन प्रयास के एक अकिंचन घटक के रूप में हमें भी कुछ कारगर अनुदान प्रस्तुत करने का अवसर मिल रहा है। इस सुयोग्य-सौभाग पर हमें अतीव संतोष है और असाधारण आनंद।

***

१- पौराणिक कथा है- टिटहरी (पानी के किनारे रहने वाले पक्षियों की एक प्रजाति) ने समुद्र के किनारे अण्डे दिये। समुद्र की लहरों ने उन्हें उदरस्थ कर लिया। टिटहरी ने समुद्र से अण्डे वापस करने की प्रार्थना की। समुद्र ने प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। टिटहरी ने घमण्डी समुद्र को दण्डित करने की ठानी। समुद्र पाटने के लिए चोंच में भरकर बालू समुद्र में डालने लगी। महर्षि अगस्त्य ने उसकी निष्ठा-संकलप को देखा, तो प्रभावित हुए। उन्होंने तपोबल से समुद्र को सुखा दिया। समुद्र ने प्रार्थना की, तो टिटहरी के अण्डे वापस कराकर उसे फिर से जल से भर दिया।

२. संघर्ष और सृजन का संयुक्त मोर्चा

स्थिति की समीक्षा-

राम-रावण युद्ध प्राय: दो महीने चला था। इसके बाद उन रीछ वानरों का क्या हुआ, जो दल-बल समेत ऋष्यमूक क्षेत्र से समेट बटोर कर लाये गये थे। नल-नील ने एक पुल बनाने के बाद पेन्शन ले ली थी क्या? भरत लक्ष्मण चँवर ही डुलाते रहते थे क्या? नहीं। वे सब सृजनात्मक कार्यों में व्यस्त हुए थे और सतयुग की वापसी का योजनाबद्ध सरंजाम जुटाते रहे थे। कृष्ण कालीन गोप गोवर्द्धन उठाने के उपरान्त छुट्टी पर नहीं चले गये थे। महाभारत भी प्राय: दो महीने में ही समाप्त हो गया था। इसके बाद उन सब लोगों ने क्या किया? इसका उत्तर भी यही है कि परीक्षित के तत्त्वावधान में सुव्यवस्थाओं की स्थापना के विशालकाय प्रयत्न हुए थे। यही रीछ-वानर करते रहे थे।

बुद्ध की परिव्राजक दीक्षा और संघारामों के निर्माण का जो वर्णन मिलता है, वह सब मिलाकर बीस-तीस वर्षों का है। इसके उपरान्त वह लाखों की बौद्ध मण्डली विसर्जित तो नहीं हो गई थी। जेल से छूटने के उपरान्त भी सत्याग्रही सर्वोदय आदि के रचनात्मक कामों में लगे रहे हैं। इतिहासकारों की कुछ शैली ही ऐसी है कि विवाह की धूमधाम अगवानी भर का उल्लेख करते हैं। उसके उपरान्त दोनों परिवारों में क्या हलचल रही, इसका वर्णन करने में उन्हें रुचि नहीं होती। इतने पर भी यह नहीं समझा जाना चाहिए कि आरम्भिक मारधाड़ प्रधान घटनाक्रम ही सब कुछ होता है। महत्त्वपूर्ण तो वह रहता है, जो सृजन की दृष्टि से किया जाता और लम्बे समय तक चलता है।

बीज एक दिन में बो दिया जाता है। मुहूर्त उसी का निकालते हैं; पर फसल आने तक जो लम्बी व्यवस्था बनानी पड़ती है, उसकी चर्चा तो लोग भूल ही जाते हैं। पर इससे क्या? वर्णन उल्लेख वाले अपनी बात आप जानें, तथ्य तो जहाँ के तहाँ रहेंगे। आपरेशन एक मिनट का होता है, पर मरहम पट्टी तो घाव भरने के लिए महीनों करनी पड़ती है।

बात सूक्ष्मीकरण के सन्दर्भ में चल रही थी। (वर्तमान पहले चरण में) उसका एक पक्ष ही हमारे जिम्मे है। गाड़ी जहाँ दल-दल में फँस गई है, उसे निकाल देने और सड़क पर खड़ी कर देने जितनी ही क्षमता और अवधि अपने पास है। (यहाँ पर जिस क्षमता और अवधि का जिक्र किया गया है, वह स्थूल काया से सम्बन्धित है। स्थूल कार्यों से मुक्त होकर बड़े कार्य अगले चरणों में किए जाने हैं, उनका उल्लेख आगे की पंक्तियों में किया गया है।) पर यह नहीं समझना चाहिए कि इसके बाद कुछ करने को शेष ही नहीं रहेगा। जो करना होगा, वह इतना ही बड़ा होगा, जो पन्द्रह मिनट के आपरेशन के उपरान्त रोगी को अच्छा करने के लिए महीनों करना पड़ता है। बहुमुखी सृजन उससे कठिन है, जितना कि इस बिगाड़ को उत्पन्न करने में करना पड़ा है। लोगों ने व्यक्ति को भटकाने और समाज को गिराने वाले अनेकानेक खर्चीले श्रमसाध्य प्रयत्न किये हैं और मुद्दतों में दुर्व्यसन पनपाये, लोगों के स्वभाव के अंग बनाये हैं। अब उन्हें छुड़ाना ही नहीं, उनके स्थान पर नई व्यवस्था बनानी और नई सभ्यता खड़ी भी करनी जो है।

हमारी दो प्रकार की कार्य पद्धति (इस पहले चरण में) है। एक को ढाल, दूसरी को तलवार कहना चाहिए। एक से अपना बचाव करना है और दूसरी से शत्रुओं को खदेड़ना है। इन दिनों खदेड़ने वाला काम प्रत्यक्षतः बड़ा दीखता है, क्योंकि उसने जीवन मरण जैसी समस्या उत्पन्न कर दी है। विनाश अपनी चरम सीमा पर है। उसे अभी और कुछ समय खेल खेलने दिया जाय, तो फिर लाखों वर्षों की संचित सभ्यता और प्रकृति का कहीं अता-पता भी न चलेगा। धरातल की दुर्गति श्मशान जैसी होगी और यहाँ कंकाल बिखरे तथा भूत नाचते दृष्टिगोचर होंगे। इस विनाश विभीषिका के उत्पादन केन्द्रों पर समय रहते गोलाबारी करनी है ताकि महाप्रलय का अवसर प्राप्त करने से पूर्व ही वे अपने हाथ पैर तुड़ा बैठें और वह न कर सकें, जो करने की डींग हाँकते और आतंक मचाते हैं।

यह एक कार्य हुआ, वो यह हमारे अपने जिम्मे है। सूक्ष्मीकरण के उपरान्त हमें विश्वास है कि दधीचि वाला इन्द्रवज्र बन सकेगा, जो वृत्तासुर का अहम् चूर्ण कर सके। हमें विश्वास है कि जिस शान्ति और प्रगति की

प्यास से धरातल जल रहा है, उसे शीतलता प्रदान करने योग्य गंगावतरण हो सकेगा। इसमें किसी भगीरथ का तप काम आ सकेगा।

दूसरा पक्ष नर्सरी उगाने जैसा है। अगले दिनों इसी धरती को स्वर्गोपम बनाना है। मानवीय गरिमा की टूटी कई कड़ियों को फिर से जोड़ना है। जो गँवा चुके, उसे फिर से प्राप्त करना है। इसलिए इसी भूमि पर नन्दन वन, कल्पवृक्ष उद्यान उगाने की आवश्यकता पड़ेगी। इसकी तैयारी भी साथ-साथ चालू रहनी चाहिए। गोला बारूद की फैक्टरी भी पूरी तत्परता से आवश्यक सामान उत्पादन करने में निरत रहे। किन्तु दूसरी ओर विशालकाय कृषि फार्म में ऐसी नर्सरी भी बोई-उगाई जाती रहे, ताकि समय पर खोया हुआ ऊँट घड़े में न ढूँढ़ना पड़े।

परशुराम परम्परा में ऐसा ही हुआ था। उनने एक बार आततायियों के शिर काटकर समस्त धरती को दुश्चिन्तकों से मुक्ति दिलाई थी। ब्रेन वाशिंग का, विचार क्रान्ति का उद्देश्य पूरा किया था। इसके तुरन्त बाद उन्होंने फरसा गंगा सागर के समुद्र में फेंक दिया और नये सिरे से नया फावड़ा उठाया। इस आधार पर वे फलदार उद्यान बोते-लगाते चले गये और जो स्तब्धता आई थी, उसे नवसृजन के नये उल्लास से भर दिया। उन्होंने सभी दिशाएँ हरियाली से भर दीं। उनका दुहरा-परस्पर विरोधी अभियान देखकर लोग आश्चर्यचकित रह गये। युद्ध में शौर्य, पराक्रम और साधनों की आवश्यकता पड़ती है। पर सृजन में तो इससे हजारों गुनी सूझ-बूझ तत्परता और साधन सामग्री चाहिए। इसलिए नाम भले ही सेनापतियों का मोटी पंक्तियों में छपता रहा हो, पर वस्तुतः श्रेयाधिकारी वे इन्जीनियर ही बनते हैं, जिनने निर्माण की विशालकाय योजनाएँ बनाईं और प्राण-पण से संलग्न होकर पूरी कर दिखाई।

अस्पताल में भी मेज पर छुरी कैंची भी सजाई जाती है, पर ठीक उसकी बगल में टाँके लगाने की सुई, मरहम, गॉज रुई आदि भी तैयार रखी जाती है। अन्यथा केवल फाड़-चीर न केवल अधूरी रहेगी, वरन् बिना क्षति पूर्ति के नये किस्म के संकट भी उत्पन्न करेगी।

तैयारियाँ दोनों तरह की- हमें दोनों ही प्रबन्ध करने पड़ रहे हैं। देवशक्तियों के साथ सम्बन्ध साध कर वह सरंजाम जुटाना पड़ रहा है

जिससे कि आतंक की छाती पर ऐसा घूँसा जमाया जा सके कि उसे पीछे ही हटते बने। इसके लिए हमसे बड़ों की-समर्थों की सहायता अपेक्षित हो रही है सो वह जुटाई जा रही है। जुट रही है और विश्वास है कि जितनी कम है, वह पूरी होकर रहेगी। अगले दिनों महाविनाश की घोषणा हर क्षेत्र से हो रही है। परिस्थितियों को देखने वाले एक ही बात कहते हैं कि महाविनाश अब आया-तब आया।

इतने पर भी हम अकेले का यह कथन अन्य सभी के प्रतिकूल है कि यह दुनिया न केवल जियेगी, वरन् और भी अच्छी बनेगी। जिन्हें रुचि हो वे इस भविष्यवाणी को नोट कर लें। युद्ध जहाँ-तहाँ क्षेत्रीय स्तर के ही होते रहेंगे। कोई ऐसी विपत्ति खड़ी न होगी जिससे समूचे संसार भर के मनुष्य समुदाय का भविष्य ही संकट में घिर जाय।

इसके अतिरिक्त दूसरा पक्ष है-सृजन का। उसके लिए ट्यूबवेल खोदना, जनरेटर बिठाना-नर्सरी उगाना है। बीज गोदाम जमा करना है। ट्रैक्टर खरीदने हैं और सरंजाम जुटाने हैं, जो लहलहाती फसल उगाने में आवश्यक होते हैं। यह साधन क्या हो सकते हैं ? कहाँ हो सकते हैं ? इसका उत्तर एक ही है कि अन्त तक की हमारी संचित सम्पदा इस प्रयोजन की पूर्ति में अच्छी खासी सहायता देगी। संचित सम्पदा से तात्पर्य है- संजोया हुआ गायत्री परिवार। इसमें से अधिकांश छोटे, हलके दीखते हैं। उनकी योग्यता एवं समर्थता हलकी लगती है, तो भी यह विश्वास किया जाना चाहिए कि यह कलियाँ अगले ही दिनों खिलकर फूल बनेंगी। यह अंकुर हरे-भरे पौधे बनकर समूचे कृषि क्षेत्र को लह-लहायेंगे। यह अभी के छोटे बछड़े कल-परसों हल चलायेंगे और रथ खींच दिखायेंगे। बच्चे सभी के अनगढ़ होते हैं। उन्हें शऊर कहाँ होता है। फिर भी वे देखने में कितने सुन्दर लगते हैं। उनकी अनगढ़ हरकतें भी सुहाती हैं। उनके अधरों पर भविष्य चमकता है। ऐसा ही कुछ प्रज्ञा परिवार के सम्बन्ध में कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। उसमें हनुमान, अंगद निश्चय ही उँगलियों पर गिनने जितने हैं, पर कुरेदकर देखा जाय, तो जटायु और केवट, शबरी और

गिलहरी की भक्ति भावना में यह समूचा समुदाय भरा पड़ा है। छोटे होने पर भी वे कहते हैं कि हमसे आशा रखी जा सकती है।

पुरुषार्थ की तीन धाराएँ - हमारा ध्यान इन दिनों तीन ओर है। **एक** अपनी ओर जिसे इन्हीं दिनों अधिक दबोचा और अधिक ऊँचे स्तर का सूक्ष्मीकरण किया जाना है। इसके लिए जो कठिन प्रयास करने हैं, उनमें उत्तीर्ण होना है, अन्यथा चूकी गोली निशाना न बेध सकेगी और व्यर्थ ही उपहास होगा।

दूसरा ध्यान विश्व समस्याओं को समझना-विश्व को मूर्धन्य दिव्य सत्ताओं का सहकार एकत्रित करना और उन केन्द्रों पर गोलाबारी करना है, जहाँ महाप्रलय के सरंजाम जमा हो रहे हैं। यह समूची प्रक्रिया सूक्ष्म जगत् की है। हम अपना ध्वज लेकर कहीं तोप बन्दूक चलाने नहीं जा रहे हैं।

तीसरा प्रयास है उन प्रज्ञा परिजनों के प्रति जो प्राणवान हैं। उन्हें अपने हट जाने (स्थूल काया में न रहने) के कारण निराश न होने देना-बिखर जाने की स्थिति न आने देना। नर्सरी की पौधों को अपने क्रम से इतना बढ़ने देना कि उन्हें समय आने पर आरोपित किया जा सके और अभीष्ट उद्यान का सुरम्य दृश्य बिना समय गँवाये देखा जा सके।

उपरोक्त तीनों मोर्चों में से एक भी कम महत्त्व का नहीं है। इनमें से किसी एक के सहारे अभीष्ट लक्ष्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। साथ ही यह भी निश्चित है कि किसी एक को भी कम महत्त्व का समझकर छोड़ा नहीं जा सकता। तीनों ही प्रयोजनों के लिए जो बन पड़ रहा है उसे समग्र तत्परता के साथ सम्पन्न कर रहे हैं। ऐसी दशा में भेंट मिलन का पुराना लोकाचार न निभ पा रहा हो। दर्शन स्पर्श की गतिविधियों को रोककर एकाकी रहा जा रहा हो, तो अप्रिय लगने या अहंकारी स्वार्थी जैसा प्रतीत होने पर भी उसे क्षम्य समझने का अनुरोध करना पड़ रहा है। हमें अपने परिजनों की प्रज्ञा पर पूरा विश्वास है कि वे इस प्रयोजन की उच्चस्तरीय फलश्रुतियों को दृष्टिगत रख हमारी साधना प्रक्रिया में सहभागी ही बनेंगे।

श्री अरविन्द के अनुरूप -

एकाकी तप साधना व लेखनी के योगाभ्यास के इन क्षणों में हमें योगीराज अरविन्द के कुछ कथन सहसा स्मरण हो आते हैं, जो

उन्होंने परतन्त्र भारत की उन विषम परिस्थितियों में अपने एकान्तवास में व्यक्त किये थे। उन्हें शब्दशः यहाँ उद्धरित कर रहे हैं-

"इतना महान और विराट् भारत जिसे शक्तिशाली होना चाहिए था, युगान्तरकारी भूमिका निभाना चाहिए था, आज दुःखी है। क्या है दुःख इसका? निश्चय ही कोई भारी त्रुटि है, जीवन्त चीज का अभाव है। हमारे पास सब कुछ है, पर हम शक्तिहीन हैं, ऊर्जा रहित हैं। हमने शक्ति की उपासना छोड़ दी, शक्ति ने हमें छोड़ दिया। माँ न अब हमारे दिल में हैं, मस्तिष्क में है, भुजाओं में है।

इस विशाल राष्ट्र के पुनर्जीवन के कितने प्रयत्न किए गए, जाने कितने आन्दोलन हुए-धर्म, समाज, राजनीति सभी क्षेत्रों में, लेकिन सदैव दुर्भाग्य साथ रहा। हमारी शुरुआतें महान होती हैं, पर न तो उनसे नतीजे निकलते हैं, न कोई तात्कालिक फल ही हाथ लगता है। हमारे अन्दर ज्ञान की कमी नहीं। ज्ञान के उच्चतम व्यक्तित्व हमारे बीच से ही पैदा हुए हैं। लेकिन यह ज्ञान मुरदा है। एक विष है, जो हमें धीरे-धीरे मार रहा है। शक्ति के अभाव में, आत्मबल के बिना यह ज्ञान अधूरा है। भक्ति भावना-उत्साह प्रशंसनीय है। लेकिन भक्ति रूपी लपट को भी शक्ति का ईंधन चाहिए। जब स्वस्थ स्वभाव ज्ञान से प्रदीप्त, कर्म से अनुशासित और विराट् शक्ति से जुड़ता है, तभी वह ईश्वरीय कृपा का अधिकारी बनता है।

यदि हम गम्भीरता से विचार करें, तो पायेंगे कि हमें सबसे पहले शक्ति चाहिए-वह है आत्मबल, आत्मिकी की सर्वोच्च शक्ति। इसके बिना हम पंगु हैं, भारतवासी पंगु हैं, सारा विश्व पंगु है। भारत को उस शक्ति को पुनः पाना ही होगा, पुनर्जन्म लेना ही होगा; क्योंकि सारे विश्व के उज्ज्वल भविष्य के लिये इसकी माँग है। मानवता के समस्त समूहों में यह केवल भारत के लिये निर्दिष्ट है कि वह सर्वोच्च नियति को प्राप्त करे, जो सारी मानव जाति के भविष्य के लिए अत्यावश्यक है। उस शक्ति की उपासना के लिए सदैव महामानव अवतरित हुए हैं। उसी कड़ी में यदि मुझे एकाकी पुरुषार्थ हेतु नियोजित होना पड़े, तो यह मेरा परम सौभाग्य होगा।"

वस्तुतः योगीराज श्री अरविन्द द्वारा सन् १९०५ के आस-पास लिखे इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है कि उनके मन में भारत के उज्ज्वल भविष्य

के प्रति कितनी उत्कट उमंग थी। उसी अन्तःप्रेरणा ने, परोक्ष जगत् से आए निदेशों ने उन्हें क्रान्तिकारी का पथ छोड़ तप साधना में निरत हो वातावरण को गरम करने हेतु विवश किया। यदि हमारी प्रस्तुत सूक्ष्मीकरण दिनचर्या को इसी साधना उपक्रम के समकक्ष समझा जाए, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। परिजन इसे उतनी ही गम्भीरता से लेंगे भी।

नवयुग जल्दी आयेगा -

जो संकट इन दिनों सामने खड़े दृष्टिगोचर हो रहे हैं, विज्ञजनों ने जिन सम्भावनाओं का अनुमान लगाया है, वे काल्पनिक नहीं हैं। विभीषिकाएँ वास्तविक हैं, इतने पर भी विश्ववासियों को यह विश्वास करना चाहिए कि समय चक्र को बदला जाएगा और जो संकट सामने खड़े दीखते हैं, उन्हें उलटा जायेगा।

सामान्य स्तर के लोगों की इच्छा शक्ति भी काम करती है। जनमत का भी दबाव पड़ता है। जिन लोगों के हाथ में इन दिनों विश्व की परिस्थितियाँ बिगाड़ने की क्षमता है, उन्हें जाग्रत् लोकमत के सामने झुकना ही पड़ेगा। लोकमत को जाग्रत् करने का अभियान 'प्रज्ञा आन्दोलन' द्वारा चल रहा है। यह क्रमशः बढ़ता और सशक्त होता जायेगा। इसका दबाव हर प्रभावशाली क्षेत्र के समर्थ व्यक्तियों पर पड़ेगा और उनका मन बदलेगा कि अपने कौशल, चातुर्य को विनाश की योजनाएँ बनाने की अपेक्षा विकास के निमित्त लगाना चाहिए। प्रतिभा एक महान शक्ति है। वह जिधर भी अग्रसर होती है, उधर ही चमत्कार प्रस्तुत करती जाती है।

वर्तमान समस्याएँ एक-दूसरे से गुँथी हुई हैं। एक से दूसरी का घनिष्ठ सम्बन्ध है, चाहे वह पर्यावरण हो अथवा युद्ध सामग्री का जमाव। बढ़ती अनीति-दुराचार हो अथवा अकाल-महामारी जैसी दैवी आपदाएँ। एक को सुलझा लिया जाय और बाकी सब उलझी पड़ी रहें, ऐसा नहीं हो सकता। समाधान एकमुश्त खोजने पड़ेंगे और यदि इच्छा सच्ची है, तो उनके हल निकल कर ही रहेंगे।

शक्तियों में दो ही प्रमुख हैं। इन्हीं के माध्यम से कुछ बनता या बिगड़ता है। एक शस्त्र बल-धन बल। दूसरा बुद्धि बल-संगठन बल। पिछले बहुत समय से शस्त्र बल और धन बल के आधार पर मनुष्य को

गिराया और अनुचित रीति से दबाया गया। जो मन आया, सो कराया जाता रहा है। यही दानवी शक्ति है। अगले दिनों दैवी शक्ति को आगे आना है और बुद्धिबल तथा संगठन बल का प्रभाव अनुभव कराना है। सही दिशा में चलने पर यह दैवी सामर्थ्य क्या कुछ कर दिखा सकती है, इसकी अनुभूति सबको करानी है।

न्याय की प्रतिष्ठा हो, नीति को सब ओर से मान्यता मिले, सब लोग हिलमिल कर रहें और मिल बाँटकर खायें, इस सिद्धान्त को जन भावना द्वारा सच्चे मन से स्वीकारा जायेगा, तो दिशा मिलेगी, उपाय सूझेंगे, नयी योजनाएँ बनेंगी, प्रयास चलेंगे और अन्ततः लक्ष्य तक पहुँचने का उपाय बन ही जायेगा।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' और **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** यह दो ही सिद्धान्त ऐसे हैं, जिन्हें अपना लिये जाने के उपरान्त तत्काल यह सूझ पड़ेगा कि इन दिनों किन अवांछनीयताओं को अपनाया गया है और उन्हें छोड़ने के लिए क्या साहस अपनाना पड़ेगा, किस स्तर का संघर्ष करना पड़ेगा? मनुष्य की सामर्थ्य अपार है। वह जिसे करने की यदि ठान ले और उसे औचित्य के आधार पर अपना ले तो कोई कठिन कार्य ऐसा नहीं है, जिसे पूरा न किया जा सके। नव निर्माण का प्रश्न भी ऐसा ही है। मनुष्य कुछ बनाने पर उतारू हो, तो वह क्या नहीं बना सकता? मिश्र के पिरामिड, चीन की दीवार, ताजमहल, स्वेज तथा पनामा की नहर, पीसा की मीनार उसी के प्रयासों से ही तो बन पड़े हैं। जलयान, थलयान, नभयान के रूप में उसी की सूझ-बूझ दौड़ती है। नवयुग निर्माण के लिए प्रतिभाशाली लोगों को लोकमत के दबाव से यदि विवश किया जाय, तो कोई कारण नहीं कि 'मनुष्य में देवत्व' के उदय और 'धरती पर स्वर्ग' के अवतरण की प्रक्रिया कुछ ही समय में सरलतापूर्वक सम्पन्न न की जा सकें।

अगले दिनों एक विश्व, एक भाषा, एक धर्म, एक संस्कृति का प्रावधान बनने जा रहा है। जाति, लिंग, वर्ण और धन के आधार पर बरती जाने वाली विषमता का अन्त समय अब निकट आ गया। इसके लिए जो कुछ करना आवश्यक है, वह सूझेगा भी और विचारशील लोगों के द्वारा पराक्रमपूर्वक किया भी जाएगा। यह समय निकट है। इसकी हम सब उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर सकते हैं।

३. ध्वंस दबेगा, सृजन उभरेगा

इन दिनों तृतीय महायुद्ध का आतंक सर्वत्र छाया हुआ है। इस वज्रपात की संभावना से समूची मानव जाति की नींद हराम है। कभी-कभी लगता है कि प्रलय की घड़ी और सामूहिक मरण का दिन निकट आ रहा है। अणु आयुधों के उपरांत विष बरसाने वाले रासायनिक अस्त्र और लेसर जैसी मृत्यु किरणें धीमे-धीमे प्रकाश में आ रही हैं और प्रतीत होता है कि प्राण-वायु बरसाने वाले बादलों से सुशोभित आकाश मरघट बनकर जलेगा। सूर्य, चन्द्र और सागर तक को मनुष्य की उद्धतता निगल बैठे, तो आश्चर्य नहीं? कल्पना तो यह भी की जाती है कि यहाँ खण्डहरों और नीरवता के अतिरिक्त और कुछ ऐसा न बचेगा, जिसे मृत्यु के ताण्डव नृत्य से भिन्न देखा जाय।

किन्तु आस्थावानों को विश्वास रखना चाहिए कि उस सर्वनाश के चरितार्थ होने में लाखों-करोड़ों वर्षों की देर है। आत्म विज्ञान की शक्तियाँ भौतिक विज्ञान द्वारा रचे हुए अनर्थ को समय रहते रोक सकेंगी। नागासाकी और हिरोशिमा की पुनरावृत्ति अन्यन्त्र कहीं भी नहीं दीख पड़ेगी। वृत्रासुर किसी समय ऐसा ही विनाश रच रहा था कि दधीचि की अस्थियों से बने वज्र ने उसकी कमर तोड़ दी और उसके मंसूबे औंधे मुँह गिरकर धूलि चाटने लगे। अभी जो बादल बेतरह गरज रहे हैं, वे तीव्रगामी उफान के साथ उड़ जायेंगे। वे न हिमयुग में बदलेंगे, न समुद्र में ऊफान लाकर धरातल को उदरस्थ ही कर सकेंगे। क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, यह न्यूटन का नियम है। भौतिकी का दर्प दलन करने के लिए वह उद्‌भव हो रहा है, जिसमें महाकाल की अप्रत्याशित भूमिका सम्पन्न होती देखी जा सके।

वैज्ञानिक, राजनेता, भविष्यवक्ता, अन्वेषक अपने-अपने तर्क और तथ्य आगे रखकर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न कर रहे हैं कि महाविनाश में अब उँगलियों पर गिनने जितने समय की देर है, किसी सीमा तक उठे हुए कदम अब वापस नहीं लौटेंगे। **इन प्रवक्ताओं के कथन, अनुमान, विश्लेषण पर कोई आक्षेप न करते हुए हमें यह पूरी हिम्मत के साथ**

कहने की छूट मिली है कि आतंक के समय रहते शांत होने की भविष्यवाणी करें और जन साधारण से कहें कि विचलित होने की अपेक्षा सृजन की बात सोंचे। दुनिया यह नहीं रहेगी, जो आज है। उसकी मान्यताएँ, भावनाएँ, विचारणाएँ, आकांक्षाएँ ही नहीं गतिविधियाँ भी इस तरह बदलेंगी कि सब कुछ नया-नया प्रतीत होने लगे।

[युगऋषि ने बार-बार यह तथ्य समझाने को कोशिश की है कि जब परिस्थितियाँ मनुष्य के नियन्त्रण के परे होने लगती है, तब ईश्वरी प्रवाह प्रत्यक्ष: अप्रत्यक्ष रूप में प्रकट होकर असम्भव को सम्भव बनाते हैं। रावण का कंस का आतंक मिटने की कल्पना उस समय की परिस्थितियों के आधार पर नहीं की जा सकती थी। अमेरिका की स्वतन्त्रता तथा वहाँ से गुलामी की प्रथा समाप्त होने की बात भी परिस्थितियों के आधार पर सम्भव नहीं लगती थी। फिर भी ईश्वरीय प्रेरणा प्रवाह के प्रभाव से वे सभी कार्य सम्भव हुए। युगऋषि के अनुसार जिस प्रकार वे क्षेत्रीय समस्याएँ हल हुई, वैसे ही आज की वैश्विक समस्याएँ भी दिव्य प्रेरणा प्रवाह से संचालित मानवीय पुरुषार्थ के माध्यम से हल होंगी।]

परिवर्तन की नई लहर -

भविष्य की कल्पना तथा योजना के विषय में दूरदर्शी विवेकशील भी अपनी सूझबूझ और अनुभव के आधार पर वर्तमान साधनों और परिस्थितियों को देखते हुए आगत का अनुमान लगाते हैं। इसे योजना निर्धारण कहते हैं जिसके तीर प्राय: निशाने पर ही बैठते हैं, यदि ऐसा न होता तो मनुष्य प्राय: अँधेरे में ही भटकता रहता और बदलती परिस्थितियों में अपना पथ बदलता रहता। पर ऐसा होता नहीं। दूरदर्शिता के आधार पर आगा-पीछा सोचते हुए जो योजनाएँ बनती हैं, उसके पीछे तर्क, तथ्य और अनुभव बड़ी मात्रा में समाहित होते हैं। अतएव विश्वास किया जाता है कि जो सोचा गया है वह होकर रहेगा। मार्ग में आने वाले व्यवधानों से जूझा जाएगा और देर सबेर में लक्ष्य तक पहुँच कर रहा जाएगा। होता भी ऐसा ही है।

आज से पाँच सौ वर्ष पुराना कोई मनुष्य कहीं जीवित हो और आकर अबकी भौतिक प्रगति के दृश्य देखे, तो उसे आश्चर्यचकित होकर रह जाना

पड़ेगा और कहना पड़ेगा कि यह उसके जानने वाली दुनिया नहीं रही। यह तो भूतों की बस्ती जैसी बन गई है। सचमुच पिछले दिनों बुद्धिवाद और भौतिकवाद की सम्मिलित संरचना हुई भी ऐसी ही है, जिसे असाधारण, अद्‌भुत और आश्चर्यजनक परिवर्तन कहा जा सके।

ठीक इसी के समतुल्य दूसरा परिवर्तन होने जा रहा है। उसके लिए पाँच सौ वर्ष प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। इस नये परिवर्तन के लिए एक शताब्दी पर्याप्त है। आज की चकाचौंध जैसी परिस्थितियाँ और आसुरी मायाचार जैसी समस्याएँ अब इन दिनों भयावह लगती हैं और उनके चलते प्रवाह को देखकर लगता है कि सूर्य अस्त हो चला और निविड़ निशा से भरा अंधकार अति समीप आ पहुँचा, पर ऐसा होगा नहीं। यह ग्रहण की युति है। बदली की छाया है, जिसे हटा देने वाले प्रचण्ड आधार विद्यमान भी हैं और गतिशील भी। लंकाकाण्ड की नृशंसता के उपरांत रामराज्य का सतयुग वापस आया था। वैसी ही पुनरावृत्ति की हम अपेक्षा कर सकते हैं।

विनाश की सोचते और चेष्टा करते हुए मनुष्य का यह संसार थक जायेगा और वैभव के साधन स्रोत सूख जायेंगे। उन्हें नये सिरे से नई बात सोचनी पड़ेगी कि प्रवाह को नई दिशा में उलट दिया जाय और उपलब्ध साधनों को सृजन के लिए लगाया जाय। ऊपर से पड़ने वाले दबाव ऐसी ही उलट फेर संभव करेंगे। उनने उलटे को उलट कर सीधा करने का निश्चय कर लिया है।

आयुध बनाने वाले कारखाने के मजदूरों और इंजीनियरों को सृजन के साधन विनिर्मित करने का नया काम मिलेगा। आयुधों से लोगों का अब पेट भर गया है। मजदूरों को उधार या मुफ्त बाँटकर अपने कारखानों की बेरोजगारी उन्हें बरबस रोकनी पड़ेगी।

अगले दिनों भूखी, प्यासी, अशिक्षित, बीमार, पिछड़ी दुनिया की आवश्यकता इतनी अधिक दृष्टिगोचर होगी कि उनकी पूर्ति के लिए युद्ध साधनों और निर्माताओं की समूची पूँजी खप जायेगी। माँग भी इतनी होगी कि सीमित मुनाफा लेकर उत्पादन को जलते तवे पर पानी की बूँदों की तरह खपाया जा सके। सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि विनाश के लिए एक छुरी या दिया सलाई पर्याप्त है। पर विकास के लिए तो अनेकानेक

साधन बड़ी मात्रा में जुटाने पड़ते हैं। अगले दिनों सृजनात्मक उत्पादन की हजार गुनी माँग होगी और कहीं से भी बेकारी-बेरोजगारी की, पूँजी जमा होने की शिकायत सुनने को न मिलेगी।

संसार भर में प्राय: दस करोड़ सैनिक और अर्ध सैनिक हैं, वे युद्ध की पढ़ाई पढ़ते, परीक्षा देते और प्रतीक्षा करते रहते हैं। उन्हें इस बाल कक्षा से आगे बढ़कर उस कॉलेज में भर्ती होना चाहिए, जिससे वे गरीबी, अशिक्षा और बीमारी के विरुद्ध मोर्चा लगा सकें और ढहा देने वाली तोपें चला सकें। दस करोड़ अध्यापक, बागवान, चिकित्सकों को आज की दुनिया के लिए स्वर्गलोक से अवतरित होने वाले देवता समझा जाय। उन्हें (सैनिकों को) मृत्यु दूत की पदवी से विरत होना पड़ेगा।

युद्धों से समस्या घटती नहीं बढ़ती ही है। घटाने और मिटाने का एक ही तरीका है। विचार विनियम, पंच फैसला, संधि या विश्वास। यह तत्त्व उभरने ही वाले हैं। अण्डे में हैं तो क्या? कल वे चूजे बनेंगे, परसों मुर्गे और कुछ ही समय बीतेगा कि ब्रह्ममुहूर्त होने की बाँग लगाने लगेंगे। सोतों को जगाने की उनकी पुकार अनसुनी न की जायेगी।

विष उगलने वाले, कुंभकरण जैसी साँस लेने वाले विशालकाय कल कारखाने बंद हो जायेंगे। न वायु प्रदूषण बढ़ेगा और न जल प्रदूषण का कुहराम मचेगा। एक-एक, दो-दो हार्स पावर की मोटरें गृह उद्योगों के माध्यम से उन वस्तुओं का उत्पादन करने लगेंगी, जिनकी विलास के लिए नहीं निर्वाह के लिए आवश्यकता है। न शिक्षितों की बेरोजगारी रहेगी न अशिक्षितों की। सभी को काम मिल जायेगा। भूखों की भूख ही नहीं मिटेंगी, वरन् समर्थों की सामर्थ्य पर भी अंकुश लगेगा, जो खाली दिमाग होने के कारण शैतानी बनकर छाई रहती है।

शहर बिखरेंगे और सिकुडेंगे, गाँव विकसित होंगे। बीच की स्थिति कस्बों की होगी। चारों ओर खेतों और बागों के फार्म होंगे। सिंचाई और बुवाई का ऐसा योजनाबद्ध ताना बाना बनेगा, जो न केवल हरित क्रांति की आवश्यकता पूरी कर सकेगा, वरन् पानी को पाताल गंगाओं से खींचकर इंदिरा नहर परियोजना की तरह रेगिस्तानों को भी उर्वरभूमि में परिणत कर सकेगा।

आज तो उत्पादन जितना ही श्रम विक्रय में लगता है। पीछे हर कस्बे में मुहल्ले-मुहल्ले में ऐसे सुपर बाजार होंगे। जहाँ एक ही जगह विक्रेताओं

और खरीददारों की कुछ ही समय में अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने का सुयोग मिल सके।

गाँवों की बसावट आज जैसी भोंडी न होगी, वरन् वे लार्जर फैमिली के रूप में खेती करने वाले ऐसे परिवारों के रूप में बसे होंगे, जो अपने आप में स्वावलम्बी भी होंगे और सुरुचि पूर्ण भी, सुसंस्कृत एवं सुनियोजित भी। बड़े शहरों की बड़ी गंदगी को तब जलाशयों में बहाकर पेयजल को दूषित न करना पड़ेगा वरन् कचरे को खाद में बदल लेने की पद्धति कार्यान्वित होने लगेगी। खेत उर्वर बनेंगे और गंदगी का कहीं दर्शन भी न हो सकेगा।

धर्म तंत्र परिष्कृत हो -

आज धर्मजीवी अगणित हैं। ६५ लाख संत बाबा, एक लाख प्रशिक्षित पादरी तथा एक लाख अन्यान्य धर्मों के पुरोहित। कुछ साधक, कुछ योगी। यह एक करोड़ का समुदाय असली धर्म की सेवा करेगा। व्यक्तित्व की प्रखरता और समाज के सुगठन के लिए जिस स्तर के लोक शिक्षण की आवश्यकता है वह नीति निष्ठा और समाज सेवा की दो गंगा-यमुना धाराओं में भली प्रकार समा जाना है। कर्मकाण्ड और जप-तप व्यक्तिगत रुचि एवं आवश्यकता का विषय है। उसे ऐच्छिक छोड़ दिया जाय पर धर्म का वह पक्ष जो जनता से अपना निर्वाह भर पाता है, मात्र इसी काम में निरत रहे कि व्यक्ति का चिंतन, चरित्र और व्यवहार शालीनता युक्त बनाये। समाज में ऐसे प्रचलन चलाने के लिए जनसम्पर्क साधे, जिससे सुधरे समाज की झाँकी विनिर्मित हो सके। ऐसी झाँकी जिसे धरती पर स्वर्ग का अवतरण कहा जा सके। यह संत वर्ग स्कूली शिक्षा के स्थान पर सामाजिक शिक्षा का नैतिक शिक्षा का, वातावरण बनाये। परिव्राजकों की तरह बादल बनकर उन पिछड़े क्षेत्रों में पहुँचे, जहाँ नवसृजन की चेतना जगाने की आवश्यकता है।

अन्यान्य गिरजाघरों-मस्जिदों, देश के अगणित देवालयों की इतनी भूमि और इतनी सम्पदा विद्यमान है जिससे कितने ही नवजीवन जगाने वाले विश्वविद्यालय चलाये जा सकें।

यह एक करोड़ की धर्म सेना विश्व राष्ट्र की सम्पदा रहे और जहाँ कहीं भी अनीति बरती जा रही है। जब विश्व राष्ट्र का, समस्त संसार का

शासन होगा और भौगोलिक दृष्टि से देशों का छोटे प्रान्तों की तरह पुनर्गठन होगा, तो स्थानीय समस्याओं को सुलझाने के लिए मनीषियों का मंत्रिमंडल काम करेगा। इनका बालिग वोट से चयन न होगा, वरन् लोकसेवी प्रतिभाओं में से ही उन्हें नियुक्त कर लिया जाया करेगा। अनगढ़ भीड़ द्वारा एक बालिग एक वोट के आधार पर ऐसे सूत्र संचालक नहीं चुने जा सकते, जो अपने-पराये का पक्षपात करने की अपेक्षा लोकहित और आदर्शों का परिपालन ही अपना कर्त्तव्य समझें।

अब बिखरे हुए, अपने क्षेत्रीय स्वार्थों की दुहाई देने वाले देशों का जमाना चला गया। अब संसार भर का एक ही विश्वराष्ट्र रहेगा। उसमें न्याय और विवेक चलेगा। न आर्थिक विषमता रहेगी, न ही जातीय। हर किसी को शांति से रहने और रहने देने का अधिकार मिलेगा। उस वर्ग का उन्मूलन किया जायेगा, जो अपने परिकर और वर्ग को अनुचित लाभ दिलाने की दुहाई देकर लोगों को भड़काते और चलते हुए कार्य में बाधा डालते हैं।

कम आवश्यकताएँ कम समय में पूरी हो जाने के उपरांत सर्वसाधारण को इतना समय मिल सकेगा कि वह अपना शारीरिक, मानसिक विकास करने के लिए समुचित अवसर प्राप्त कर सके। अपने सम्पर्क क्षेत्र में प्रगतिशीलता उत्पन्न करने वाले क्रिया कलापों में भी योगदान दे सकें।

परस्पर मिल जुलकर उपयोगी काम करने से सहज मनोरंजन हो जाता है। संगीत, साहित्यकला को प्रज्ञा और श्रद्धा को उभारने में प्रयुक्त किया जा सके, तो उसमें इतने उच्च कोटि के मनोरंजन की व्यवस्था हो सकती है, जिस पर आँखें व मन-मस्तिष्क खराब करने वाले सिनेमाओं को निछावर किया जा सके। प्रकृति अपने आप में इतनी अधिक सुन्दर और सुखद है कि उसकी गोदी में खेलने का आनंद उस अनुभूति की पूर्ति कर सकता है जिसके लिए कि आज हर किसी को बड़ी प्यास है। वैचारिक प्रदूषण की मुक्ति की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम होगा।

मनुष्य में देवत्व उदय करने वाला और धरती पर स्वर्ग जैसा वातावरण बनाने वाला समय अब निकट है। अंधकार सिमट कर पलायन कर रहा है। उषाकाल का अरुणोदय उल्लास का संदेश लेकर आया है। हर हृदय सरोवर में अब शतदल कमल खिलने ही वाले हैं। ***

४. दोनों तरह के युद्धों पर लगेगा अंकुश

पशु तात्कालिक समस्याओं पर सोचता है। उसे न भविष्य की चिन्ता होती है और न परिवर्तनों से बचाव करने की। न विपन्नता के बीच सुविधा सोचने की क्षमता होती है। किन्तु मनुष्य को स्रष्टा का सर्वोपरि उपहार दूरदर्शी बुद्धिमत्ता के रूप में मिला है। वह भविष्य की कल्पना कर सकता है। आज की परिस्थितियाँ-कल क्या प्रतिफल उत्पन्न करेंगी? इसका अनुमान तर्क, तथ्य और अनुभव के आधार पर लगाया जा सकता है? मानवीय सुरक्षा और प्रगति का बहुत कुछ आधार इस विशेषता पर ही निर्भर है। भविष्य के प्रति उत्सुकता का अनुमान इस आधार पर भी लगाया जाता है कि ज्योतिषी, भविष्यवक्ता हर किसी को आकर्षित करते हैं। समाचार पत्रों में राशि फल, भविष्यफल छपते रहते हैं। प्रस्तुत समस्याओं के संबंध में मनीषी वर्ग प्रायः इस विषय पर चर्चा करता रहता है कि भविष्य की समस्याएँ क्या हो सकती हैं? और उनके समाधान क्या निकल सकते हैं?

शीतयुद्ध और गरम युद्ध दो प्रकार की लड़ाइयाँ होती हैं। इसमें शीतयुद्ध कम कष्ट कर और गरम युद्ध देखने में भयंकर वीभत्स लगते हैं, पर परिणाम दोनों के लगभग एक जैसे होते हैं। शीतयुद्ध को कैंसर और गरम युद्ध को हृदयाघात कह सकते हैं। पर दोनों ही ऐसे होते हैं, जो प्राण हरण करके रहें।

शीतयुद्ध- आज का शीतयुद्ध जनसंख्या का अनियंत्रित अभिवर्धन है। वह चक्रवृद्धि गति से बढ़ता है। अब से १० हजार वर्ष पूर्व संसार भर में १५ लाख आबादी कूती जाती है। पर चक्रवृद्धि का चमत्कार तो देखिए इन दिनों ५०० करोड़ मनुष्य इस धरती पर रहते हैं और रोकथाम करते हुए भी अगली शताब्दी में कम से कम दूनी आबादी हो जाने की संभावना व्यक्त की जाती है। जब आज के मनुष्य की दैनिक आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती और महँगाई का बोझ औसत मनुष्य की कमर तोड़ता है, तो जब आबादी दूनी हो जायेगी, तब स्थिति क्या होगी? इसकी भयावह कल्पना कर सकना किसी भी दूरदर्शी के लिए कठिन न होना चाहिए। हमें सर्वप्रथम इसी संकट

का मुकाबला करना चाहिए। सर्वप्रथम इसलिए कहा जा रहा है कि इसका समाधान जन सामान्य के हाथों है। लोग अपना चिंतन बदल दें और व्यवहार में थोड़ा अंतर करें, तो इतने भर से विपत्ति की रोकथाम हो सकती है।

दौड़ती गाड़ी रुकने में कुछ देर लगती है। इस आधार पर दूनी जनसंख्या पहुँचने तक पूरी तरह ब्रेक न कसे जा सकें और विराम न मिले, ऐसी आशंका है। यदि इतना बन पड़े, तो भी संतोष की साँस ली जा सकती है और समुद्र पर तैरती खेती करके किसी हद तक समाधान सोचा जा सकता है। समुद्र में अभी भी जहाँ-तहाँ ऐसे द्वीप हैं, जिनमें भूमि की उर्वरता और पीने का पानी मिल सकता है। उनमें बसावट की अभी भी गुंजाइश है। तैरते उपनगर भी समुद्र तट के बड़े नगरों के इर्द-गिर्द बसाये जा सकते हैं। आकाश में बस्ती बसाना तो क्लिष्ट कल्पना है, पर इन प्रयोजनों के लिए समुद्र और भूमि के वीरान क्षेत्रों को उपजाऊ बनाने का, रेगिस्तानों को नखलिस्तान बनाने का प्रयोग एक सीमा तक सफल हो सकता है। पर्वतों पर भी वृक्ष विकास के साथ-साथ आबादी बढ़ाने की कल्पना भी तथ्यहीन नहीं है। आपत्तिकाल में ऐसे ही उपायों से ठूँस-ठास का प्रयोजन पूरा हो सकता है।

गरम युद्ध- दूसरा गरम युद्ध है- तीसरे महायुद्ध का संकट जिससे समूची मानव जाति आतंकित है। परमाणु युद्ध, विष गैसें तथा मृत्यु किरणें, उपग्रह आदि के मारक साधन जिस तेजी से बढ़ रहे हैं और उनका भण्डारण जिस विशाल परिमाण में हो रहा है, उसे देखते हुए लगता है कि यह खेलने के खिलौने नहीं हैं। इतना विपुल धन और साधन इसके लिए लगाया जा रहा है, उसे सनक या अपव्यय नहीं माना जा रहा है। निर्माताओं का ख्याल है कि एक दिन वे शत्रु पक्ष पर इस जखीरे को अचानक उड़ेल देंगे। स्वयं बच जायेंगे और समूची धरती पर निष्कंटक राज्य करेंगे। समस्त संसार की जनशक्ति-धनशक्ति और कौशल शक्ति उनके हाथ में होगी। थल, नभ और जल पर उनका विशाल साम्राज्य स्थापित होगा।

पर यह योजना बनाने वाले यह भूल जाते हैं कि एक पक्षीय युद्ध नहीं हो सकता। विपक्षी भी हाथ पर हाथ रखे नहीं बैठा रहेगा। उभयपक्षीय

प्रहारों से कोई भी जीतेगा नहीं। दोनों हारेंगे। युद्ध भले ही एक दिन चले, पर उसके उपरांत समस्याएँ ऐसी होंगी, जिनका हजार वर्ष में भी सुलझना कठिन है। ऐसी दशा में आशंका तो यहाँ तक की जाती है कि यह धरती मनुष्यों के रहने योग्य ही न रहे। इस अमृत पिण्ड को विष पिण्ड बनकर रहना पड़े और जीवन कदाचित विषपायी जीवों भर के लिए शेष रहे।

किन्तु बारीकी से हलचलों पर दृष्टि लगाये हुए लोग बदलते तेवरों और बदलते पैंतरों को देख रहे हैं। संभवत: अणु युद्ध की विभीषिका एक दूसरे को डराते रहने के ही काम आयेगी। उसका उस भयावह रूप में प्रयोग न होगा। प्रचलित हथियार ही आधी दुनिया का कतर व्योंत कर देने के लिए काफी हैं।

मूर्धन्य युद्धलिप्सु अगले गरम युद्ध में लैसर किरणों का उपयोग करने की बात सोच रहे हैं। यह मृत्यु किरणें अदृश्य रहती हैं, पर जिस क्षेत्र में पहुँचती हैं, वहाँ सब कुछ जलाकर रख देती हैं। जलाना भी ऐसा जिसमें अग्नि की लपटें न उठें। लैंसर किरणें प्राणियों के प्राण हरण करती हैं। वस्तुओं को नि:सत्त्व कर देती है। वृक्ष वनस्पतियों को सुखा देती हैं। पानी को सुखा देती हैं और भी बहुत कुछ ऐसा कर देती हैं, जिससे वस्तु या प्राणी की शकल तो बनी रहे, पर उसके भीतर जीवन जैसी वस्तु न रहे। चट्टान जैसी स्थिर भर रहे। लैसर किरणें उपग्रहों को गिरा सकती है, प्रेक्षपणास्त्रों की दिशा मोड़ सकती हैं। उनके विनाश स्तरीय प्रयोगों को मृत्यु किरण नाम दिया गया है। इस प्रहार में यह सुविधा है कि आक्रमण अदृश्य होता है, धुँआ नहीं उठता, विकिरण नहीं फैलता और अंतरिक्ष में पृथ्वी पर चढ़े हुए आवरण कवचों को क्षति पहुँचने का खतरा नहीं रहता। इसलिए अणुयुद्ध के स्थान पर लैसर युद्ध सरल पड़ता है। प्रथम आक्रमणकर्त्ता नफे में भी रहता है। उसे पृथ्वी से ऊपर फेंकने की अपेक्षा उपग्रहों के माध्यम से धरती के अमुक क्षेत्र में गिराना सरल पड़ता है। यही स्टार वार है।

आकाश में प्लेटफार्म बनाने के लुभावने सपने दिखाकर वस्तुत: आकाश में मृत्यु किरणों के भण्डारण किये जा रहे हैं। इस प्रहार में तात्कालिक लाभ तो है, शत्रु एक प्रकार से अपंग हो जाता है, पर एक खतरा भी है कि आक्रान्ता भूमि या वस्तुएँ समस्या बनकर रह जाती हैं जो विकिरण सोख

लेती हैं और संपर्क में आने वाले को अपनी चपेट में लेती हैं। उनसे कब तक बचा रहा जाय ? फिर जीती हुई भूमि से क्या लाभ उठाया जाय ? वह तो विजेता के लिए भी उलटी समस्या बन जाती है।

इसके अतिरिक्त एक प्रश्न और भी शेष रह जाता है कि अब तक जो अणु आयुध बन चुके हैं, उनका क्या हो ? उन्हें जमीन में गाड़ने, समुद्र में पटकने, अंतरिक्ष में उड़ा देने पर भी खतरे ही खतरे हैं। इन उपायों के कारण भी आयुधों का प्रभाव और विकिरण तो बना ही रहता है। वह घूम फिर कर पृथ्वी के ऊपर या नीचे पहुँचकर विष बरसा सकता है या ज्वालामुखी उगल सकता है। समुद्र जल को भाप बनाकर आकाश में उड़ा सकता है। हिम युग आरंभ कर सकता है और सूर्य किरणों को पृथ्वी पर आने से रोकने वाला काला आच्छादन बनकर आकाश को घेर सकता है। इसलिए उसे फिर कभी के लिए सुरक्षित भी नहीं रखा जा सकता है। प्रयोग में जो खतरे हैं, उसी से मिलते-जुलते खतरे भण्डारण के भी हैं। बोतल में फिर से बंद होने के लिए जिन्न तैयार नहीं और खुला छोड़ा जाता है, तो विघातक उपद्रव खड़े करता है।

यह गरम युद्ध की चर्चा हुई। बिना अणु आयुधों के सामान्य एवं विकसित आयुधों से लड़े गये इसी शताब्दी के दो महायुद्धों की विनाशलीला देखी जा चुकी है। जितने रक्तपात से मरे उससे दूने काली मौत बनकर तरह-तरह की महामारियाँ खा गई हैं। कितने अनाथ और अपंग हुए, कितनी आर्थिक क्षति हुई। इसका लेखा-जोखा लेने पर प्रतीत होता है कि जीता कोई नहीं, हारे सभी। अगला अधिक विघातक अस्त्रों द्वारा यदि युद्ध होता है, तो कहा जा सकता है कि मरेंगे सभी, जीवित कोई नहीं बचेगा। जो जीवित रहेंगे, वे भी इस योग्य न रह सकेंगे कि स्वावलंबी जीवन जी सकें। फिर परायों की सहायता कर सकना भी किसके बलबूते की बात रहेगी। विषाक्तता के वातावरण में जीवन इस योग्य भी नहीं रहेगा, जिसे कोई प्रसन्नतापूर्वक जीना चाहे। ऐसी-ऐसी अगणित समस्याएँ और विपत्तियाँ पैदा करेगा, होने वाला या न होने वाला गरम युद्ध।

फिर होगा क्या ?- अदृश्य दूरदर्शियों का निष्कर्ष है कि इतने बड़े भारी बोझ को लादते, ढोते वे लोग थक जायेंगे, जिन्हें युद्ध विजय का

लालच इन दिनों आवेश ग्रस्त किये हुए है। वे मद्यपी जैसे आवेश ही हैं, जो हारे हुए जुआरी की बाजी खेल रहे हैं। किन्तु यह निश्चित है कि इसे इसी तरह बहुत दिन आगे न धकेला जा सकेगा। युद्ध जितनी ही महँगी उसकी तैयारी पड़ रही है। लूट कर धनवान् बनने से पहले उस लालच की पूर्व तैयारी ही खोखला किये दे रही है।

कुश्ती के दाँव पेचों में जो दाँव पेच तुर्त-फुर्त चल जाते हैं, उनमें बल भी रहता है। पर जब पहलवान आपस में गुँथ जाते हैं और रगड़ाई शुरू हो जाती है, तो दोनों का कचूमर निकल जाता है। वे ऊब जाते हैं। मन:स्थिति को देखकर बीच में ही उन्हें बिना हार-जीत की कुश्ती समाप्त हुई घोषित करके जोड़ छुड़ा देते हैं। वे अपने मन में भी छूट जाने की ही बात सोचते हैं। वह समय दूर नहीं जब ऐसी ही स्थिति आने वाली है। तैयारी का भार ही इतना बोझिल होगा, जिसे वहन नहीं किया जा सकेगा। अत: तर्क के आधार पर भी यही कहा जा सकता है कि थकों को विराम लेना पड़ेगा और अनुभव तथा विवेक के आधार पर अंतिम दुष्परिणाम की बात समझते हुए विनाश विग्रह को बंद करना पड़ेगा। यह कथन भविष्यवक्ताओं का भी है।

तैयारी में जो व्यय हुआ है, उसकी क्षतिपूर्ति की बात सूझ पड़ेगी। भय और अविश्वास करते रहने की अपेक्षा एक बार साहसपूर्वक विश्वास कर देखने की बात सूझेगी। संधि समय की आवश्यकता बनेगी और वह फिर अनुभवों का स्मरण दिलाते हुए तत्पर भी रहेगी।

संक्षेप में समस्त भयावह संभावनाओं के होते हुए भी दूरदर्शियों की भाषा में यह कहा जा सकता है कि प्रलय युद्ध नहीं होगा। एक दूसरे को धमकी देने के लिए जहाँ-तहाँ छेड़छाड़ करते रहेंगे। धमकी और घुड़की चलती रहेगी और इस प्रकार बीसवीं शताब्दी बीत जायेगी।

५. परिवर्तन होना है राजतंत्र में भी, अर्थ तंत्र में भी

राजतंत्र की दिशा -

इन दिनों शासन सत्ता की शक्ति समस्त तंत्रों से ऊपर है। उसे प्रगति और अवगति दोनों की ही प्रशंसा-निन्दा सिर पर ओढ़नी होगी। परिवर्तन के इस माहौल में उसी को अपने दायित्व और ढाँचे दोनों ही बदलने के लिए तैयार होना होगा। राज्य सत्ता में भागीदारी एवं दिलचस्पी लेने वालों को अगले दिनों कुछ प्रवाह तेजी से बहते दिखाई पड़ेंगे। इसलिए अपने को उनके अनुकूल समय रहते ढाल लेने में भलाई है।

इस संदर्भ में पहला निर्धारण है- युद्ध से कदम वापस लेने की बात सोचना। जिस विषय में सोचा जाता है उसका रास्ता भी अवश्य मिल जाता है। हर किसी को सोचना चाहिए कि इकट्ठे युद्ध का अर्थ आत्मघात है। न्याय की रक्षा और अनौचित्य के निवारण का यही एक मात्र मार्ग नहीं है। इसके अलावा भी कुछ रास्ते हैं और वे निकलेंगे। हमें इन्हीं के समर्थन की तैयारी करनी चाहिए।

दूसरा विचारणीय प्रश्न राजनीतिज्ञों के सामने यह है कि वे क्षेत्रवाद को समेटें। देश भक्ति की दुहाई न दें। एक राष्ट्र-एक विश्व बनाने की बात सोचें। हमारा अपना मुल्क उसमें कहाँ होगा, इसका विचार न करें। अब यह सोचना जरूरी है कि शासन कितने व किसके हाथों में हो। इसके संबंध में कसौटियाँ निर्धारित हों। जो इसके योग्य हों, उन्हीं को वह जिम्मेदारी सौंपी जाय।

आज की खर्चीली और प्रोपेगेण्डा पर अवलम्बित चुनाव पद्धति में ऐसा परिवर्तन आवश्यक है, जिसमें समझदार और जिम्मेदार लोग ही संचालक तंत्र बना सकें। सर्वसाधारण को स्थानीय पंचायत स्तर की समितियाँ बनाने का हक हो। बड़ी जिम्मेदारियाँ उठाने वालों को वोट देने की योग्यता अनुबंधित हो। बहुमत आवश्यक नहीं। अल्पमत में भी जो विचारशील लोगों के वोट प्राप्त कर सकें, वे ही शासन तंत्र में पहुँचें। चुनाव लड़ने के

लिए राशि खर्च करने की आवश्यकता न पड़े। सरकार ही उतना प्रबंध कर दे अथवा जनता वह खर्च वहन करे। पार्टियाँ चुनाव लड़ें, इसकी अपेक्षा यह अच्छा है कि बिना पार्टी देश में एक ही प्रजा पार्टी रहे और उसके द्वारा चुने हुए संभ्रान्त लोग शासन तंत्र चलाएँ। महत्त्वपूर्ण पदों पर भर्ती करने के लिए परीक्षाएँ उत्तीर्ण करना ही पर्याप्त नहीं, वरन् उसकी प्रतिभा, योग्यता और ईमानदारी जैसी कई कसौटियों पर कसी जाने के उपरांत ही महत्त्वपूर्ण स्थानों की पूर्ति हो सकती है।

वर्तमान स्थिति में राजनैतिक क्षेत्र में उपरोक्त तीन प्रकार के परिवर्तनों की हवा चलेगी। दैवीसत्ता इसके लिए अनुकूलता उत्पन्न करेगी। (उसके प्रभाव से) लोगों के विचार इन संभावनाओं की ओर स्वयमेव मुड़ते दिखाई पड़ेंगे। इसमें राजनैतिक क्षेत्र को प्रभावित करने वाले मनीषी एवं अर्थशास्त्री दोनों ही नये और प्रौढ़ विचार देंगे।

अर्थ तंत्र की मर्यादाएँ – राजनीति के उपरांत दूसरा समर्थ क्षेत्र है अर्थतंत्र का। इन दिनों अर्थ तंत्र अधिक लाभदायक उत्पादन करने के लिए स्वच्छन्द है। जो रोकथाम है, वह नाम मात्र की है। लोगों की कुरुचि को भड़काने और पैसा बनाने में उसे न जनता रोक पाती है न शासन। जनमानस को प्रभावित करने वाले साहित्य, चित्र, फिल्म आदि में कुरुचि वाले उत्पादन की भरमार है। अगले दिनों इस प्रकार के उपार्जन पर रोक लगेगी। नशा उत्पन्न करने की बात कोई मानवी मौलिक अधिकार की दुहाई देकर न कर सकेगा। जो भी उत्पादन हो, उसकी उपयोगिता जनहित में सिद्ध करने के पश्चात् ही उसके निर्माण की छूट मिला करेगी।

विवेकपूर्ण उत्पादन– जन जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने वाली प्रमुख वस्तुएँ कुटीर उद्योग के क्षेत्र में चली जायेगी और उन्हें सहकारी तंत्र के अंतर्गत रखते हुए ऐसी स्थिति उत्पन्न की जायेंगी कि बड़े उद्योग उनसे प्रतिद्वद्विता न करने पाएँ। वस्त्र उद्योग, जन, जीवन से संबंधित शिल्प छोटे कारखानों और छोटे कस्बों में बनने लगें, तो बेकारी की समस्या न रहेगी। बड़े कारखाने मात्र उन्हीं वस्तुओं को बनाएँ जो कुटीर उद्योगों के अंतर्गत नहीं बन सकतीं।

अब निर्यात का सामान बहुत कम रह गया है। जो रह गया है वह भी बहुत जल्द घटेगा या समाप्त होगा। कुछ ही दिनों में सभी देश अपनी जरूरत का सामान बनाने लगेंगे। कच्चे माल को इधर-उधर करने की ही जरूरत पड़ा करेंगी। इसलिए उचित है कि पहले से ही निर्यात को महत्त्व न दिया जाय। आयात कच्चा माल का ही किया जाय। ऐसा करने से बड़े शहरों में बड़े उद्योग लगाने के कारण घिचपिच जन्य जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, न होंगी। शहरों का मोटापा हलका होगा और दुबले-गाँव कस्बे बनकर मजबूत दृष्टिगोचर होने लगेंगे।

उचित मुनाफा- वर्तमान धनाध्यक्ष प्राय: अधिक आमदनी वाले कारोबार बढ़ाते हैं और बड़े मिल कारखाने जमाने में अधिक लाभ देखते हैं। यह प्रवृत्ति जल्दी ही बदली जानी है। असमंजस उनके सामने है, जो बड़े व्यवसायों में फँसे हुए हैं। उन्हें समय के साथ बदलना होगा। अच्छा हो वे हठ न करें और समय रहते बदलने की प्रक्रिया आरंभ कर दें। अन्यथा एक साथ झटका पड़ने पर वे सँभल न सकेंगे। सरकारी बैंक अभी तो उन्हें बड़े उद्योगों के लिए बड़ी सुविधाएँ देती हैं, पर अगले दिनों यह भी संभव न रहेगा। आने वाले दिनों में कुटीर उद्योग ही प्रमुख होंगे। वे कस्बों में चलेंगे और सहकारी सीमित स्तर पर उनका ढाँचा खड़ा होगा।

धनाध्यक्षों को समय की चेतावनी इतनी ही है कि समिति लाभांश में काम चलाएँ। जो कमाएँ उसमें लाभांश का सीमा बंधन हो। इसी समिति में वे श्रमिकों को भी भागीदार रखें। इस प्रकार समय बदल भी जायेगा और वे हैरान भी न होंगे। अगले दिनों अर्थ तंत्र चलेगा इसी तरह और मुड़ेगा इसी तरफ। इसलिए इस संभावना को भविष्यवाणी मानकर नोट कर लिया जाय और जिनसे इसका संबंध है, वे अपना ढर्रा अभी से बदलना आरंभ कर दें।

खर्च और संग्रह की मर्यादा - अर्थ तंत्र की बात चल पड़ी, तो यहाँ एक और बात भी नोट करनी चाहिए कि समाज को जन साधारण के ऊपर लदे हुए आज के उत्तरदायित्व भी अपने ऊपर लेने होंगे यथा-शिक्षा-चिकित्सा, व्यवसाय आदि। आज धनिक अपने परिवार के लिए निर्वाह से अधिक धन जुटा लेते हैं। निर्धन मारे-मारे फिरते हैं। उनके स्तर में जमीन

आसमान जैसा अंतर रहता है। अगले दिनों सर्वसाधारण की अतिरिक्त जिम्मेदारियाँ समाज तंत्र को ही वहन करनी पड़ेगी। इसलिए आवश्यक होगा कि वही व्यक्ति उत्पादन का स्वामित्व ग्रहण करे। सरकार जिम्मेदारियाँ उठाये। कमाने वाले पूँजी जेब में रखे, हर व्यक्ति को सामर्थ्य भर काम करने पर बाधित होना होगा और औसत स्तर के अनुरूप गुजारा करने के लिए आदत डालनी होगी।

आज कोई कितना ही धन जमा कर सकता है और मनमर्जी के कार्यों में खर्च कर सकता है। किसी को भी दे सकता है। किन्तु कल वैसी स्थिति न रहेगी। पूँजी एक तंत्र के पास जमा होगी। निजी संचय की और मनमाने अपव्यय की तब किसी को भी छूट न रहेगी। इससे दुर्व्यसनों और अपराधों का पत्ता कटेगा। चाहे जितना धन पास रखने और चाहे जिस तरह खर्च करने की सुविधा ने ही समाज में अनेकों दुष्प्रवृत्तियाँ उत्पन्न की हैं। इन्हें मिटाने के लिए पुलिस, सेना, अदालत पर्याप्त नहीं। वरन् धन संबंधी प्रचलित अराजकता पर भी अंकुश लगाना होगा। भावी अर्थ तंत्र का यही स्वरूप होगा।

आज संसार में अनेक प्रकार की अर्थ पद्धतियाँ प्रचलित हैं, पर अगले दिनों वह एक ही रहेगी। वृहद् परिवार व्यवस्था इसी को कहते हैं। परिवार के सभी कमाऊ लोग जो कमाते हैं, एक स्थान पर जमा करते हैं। उसी में से हर छोटे-बड़े का उसकी स्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार काम चलता है। संसार अगले दिनों एक कुटुम्ब की तरह होगा। इसे साझे की दुकान कहना चाहिए। सभी देश अपनी भूमि, सम्पदा बड़े विश्व परिवार में विसर्जित करेंगे। यही काम व्यक्तियों को भी समाज के भण्डार में जमा करते हुए करना होगा। यह भविष्यवाणी संभावना या आवश्यकता जो भी है, पर भवितव्यता के रूप में इसे सुनिश्चित समझा जाना चाहिए।

अभ्यास सुधारें- यह कब तक पूरा होगा? इस संदर्भ में युग संधि के भावी १६ वर्षों की चर्चा प्राय: होती रहती है। वह निरर्थक नहीं है। जो अनुपयुक्त है वह गलती चलेगी और जो उपयुक्त है, वह ढलती चलेगी। समझदार परिवर्तन का पूर्वाभास पा लेते हैं, तो समय रहते अपने चिन्तन-

व्यवहार और व्यवसाय-क्रियाकलाप में तद्नुरूप हेरफेर करना आरम्भ कर देते हैं। उन्हें सुविधा रहती है। आकस्मिक टकरावों की मुसीबत नहीं सहनी पड़ती। जो अड़ियल प्रकृति के हैं, जो चल रहा है, उसी को अनादि और अनन्त मान बैठते हैं, उनके लिए बदली परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाना कठिन पड़ता है।

प्रस्तुत दुनिया बहुत ऊबड़-खाबड़ हो गई है। विगत तीन सौ वर्षों में वैज्ञानिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन इतनी तेजी से हुए हैं कि इसे जादू तिलिस्म कहा जा सकता है। अब से तीन सौ वर्ष पुराना कोई व्यक्ति कहीं जीवित हो और प्रकट होकर आज की परिस्थितियों का पर्यवेक्षण करे, तो उसे पग-पग पर आश्चर्यचकित रहना पड़ेगा। रेल, मोटर, जलयान, वायुयान, टेलीफोन, टेलीविजन, रेडियो, बिजली आदि का जितना प्रचलन हो चुका है इसे देखते हुए इन सभी वस्तुओं से सर्वथा अपरिचित व्यक्ति अवाक ही रह जायेगा।

अगले बीस वर्ष इससे भी अधिक आश्चर्यजनक होंगे। इन दिनों लोग क्या सोचते, क्या चाहते, क्या करते रहते हैं, उन सब को नोट करके रखा जाय और बीस वर्ष बाद की दुनिया के साथ उसकी संगति बिठाई जाय, तो प्रतीत होगा कि दोनों की दिशाधारा में जमीन-आसमान जैसा अन्तर पड़ गया। नासमझ आदमी अपनी सम्पदा और बुद्धिमता की अकड़ में जिन प्रचलनों को उत्साह अहंकारपूर्वक अपनाए हुए हैं, उनमें से प्रत्येक को वह इस बीच परख चुका होगा। इतना ही नहीं, जो अनुपयुक्त है, उसे छोड़ने की तैयारी भी कर चुका होगा। मस्तिष्कीय हेरफेर से विचार पद्धति में जब हेरफेर होना आरम्भ हो जाता है, तो फिर क्रिया रूप का परिवर्तन कोई बहुत अधिक कठिन नहीं होता। कठिनाई आकस्मिक परिवर्तनों से आती है। जो कभी सोचा ही नहीं गया था, वह सामने आ खड़ा हो, तो आदमी हड़बड़ा जाता है और लगता है या तो किसी स्वप्न लोक से आया है या जादूगरों की दुनिया में प्रवेश कर रहा है।

हजारों-लाखों वर्षों से यों हर क्षेत्र में प्रगति प्रयास होते रहे हैं और एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी कुछ अधिक समझदारी का परिचय देती रही

है। पर अबकी बार जो हुआ है, होना है उसे तो एक प्रकार से अद्भुत ही कहना चाहिए, अभूतपूर्व भी। पिछले तीन सौ वर्षों में दुनिया कहाँ से कहाँ चली गई और अगले बीस वर्षों में उसका क्या स्वरूप बनने जा रहा है, इसे तुलनात्मक दृष्टि से देखते हुए भयंकर भूकम्प की ही उपमा दी जा सकती है। यह उभय पक्षीय परिवर्तन ऐसा है, जिसे भयानक ज्वार-भाटे के समतुल्य कहा जाय तो कुछ भी अत्युक्ति न होगी।

*****

६. सत्ता लोलुप, धन लोलुप समय पर चेत जायें

अदृश्य के संकेत समझे -

आँखों की दृश्य शक्ति पर कौन अविश्वास करेगा? और जो दीख पड़ता है उसे असत्य कैसे कहा जाय? किन्तु बात यह भी नहीं है कि जो आँखों से दीख पड़ता है सब कुछ उतने तक ही सीमित है। यदि ऐसा ही रहा होता तो माइक्रोस्कोप से दीख पड़ने वाले छोटे घटकों-और टेलिस्कोप से दृष्टिगोचर होने वाले दूरस्थ दृश्यों को मान्यता कैसे मिलती।

मनुष्य समझदार प्राणी है। वह वर्तमान के समीकरणों के अनुरूप जो कुछ भी है उसी के आधार पर अनुमान लगाता है और भविष्य को तद्नुरूप घटित होने की आशा लगाता है। इस बौद्धिक परिपाटी को अनुपयुक्त भी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि संसार के प्राय: समस्त कार्य इसी आधार पर सम्पन्न होते हैं। फिर भी एक तथ्य अपनी जगह पर बना ही रहता है कि कोई अदृश्य शक्ति अपनी मर्जी भी कम नहीं चलाती और मनुष्य के परिश्रम के निष्कर्ष को झुठलाने से भी रुकती नहीं।

कई बार प्रवीण किसानों की फसल भी पाला, सूखा, टिड्डी आदि कारणों से चौपट होते और कई बार अन्धे के हाथ बटेर लगते भी देखी गई

है। कइयों को उत्तराधिकार में अनायास ही प्रचुर सम्पदा हाथ लग जाती है और कई बिना परिश्रम किये लाटरी खुलने जैसे लाभ उठाते देखे गये हैं। यह अदृश्य के अनुदान हैं। इस सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। यह भवितव्यता है, जिसे कई बार प्रत्यक्षवादी निष्कर्षों को उलट जाते भी देखा गया है। नावें डूब जाती हैं और आत्महत्या के लिए पानी में डूबने वाले भी किनारे पर जा लगते हैं और ईश्वर की इच्छा के अनुरूप इस आचरण के उपरान्त भी लम्बे समय तक जीते हैं। इन बुद्धि क्षेत्र को चुनौती देने वाली घटनाओं के अस्तित्व से सदा इनकार नहीं ही किया जा सकता।

इन पंक्तियों में आज की परिस्थितियों के सन्दर्भ में चर्चा की जा रही है और जो कार्य करने की संगति मिलाते हुए प्रतिफल प्रतीत होता है उसके सही गलत होने के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा रहा है। ऐसा प्रकाश जिसके पीछे महत्वपूर्ण अनुभूतियाँ काम करती हैं और जिन्हें किसी सशक्त संकेतों पर अवलम्बित कहा जा सकता है।

इन पंक्तियों का लेखक जिन महत्वपूर्ण प्रकाश को प्रस्तुत कर रहा है उसे उसका व्यक्तिगत अनुमान आग्रह न माना जाय तो अधिक उपयुक्त है। यह प्रतिपादन ऐसा भी है जिस पर विश्वास करने वाला समय आने पर यह अनुभव न करेगा कि हमें व्यर्थ ही फुसलाया और डराया गया। **हमें अदृश्य के साथ सम्बन्ध जोड़कर काम करते हुए प्रायः पूरा जीवन बीत गया। इतने समय में जो संकेत मिलते रहे हैं वे हमारे व्यक्तिगत जीवन में अक्षरशः सही घटते रहे हैं। दूसरों के या सार्वजनिक प्रसंगों के सम्बन्ध में भी सम्भावनाएँ विदित होती रही हैं, पर उन्हें प्रकट करने पर प्रतिबन्ध रहने के कारण भविष्य कथन जैसा कभी कुछ किया नहीं गया। यह प्रथम अवसर है जिनका व्यक्ति विशेष से नहीं जन-साधारण से सीधा सम्बन्ध है। यह कथन स्वेच्छापूर्वक प्रकट करने का कोई मन भी नहीं था पर सार्वजनिक हित में इसे प्रकट करने के लिए उकसाये जाने पर ही ऐसा कुछ करने का साहस सँजोया गया है जिसका निकटवर्ती भवितव्यता और समूचे विश्व के लिए विचारणीय प्रसंग है।**

अपनी-अपनी भूलें सुधारें -

यहाँ सर्वप्रथम राजनैतिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में चर्चा की जा रही है। देशों के भीतर होती रहने वाली उथल-पुथल के सम्बन्ध में नहीं वरन् समूचे विश्व को समान रूप से प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के सम्बन्ध में कुछ ऐसा कहा जा रहा है, जिस पर मात्र विचार ही नहीं किया जाना चाहिए वरन् यह भी मान कर चलना चाहिए कि प्रस्तुत कथन सही निकला तो किसे अपना क्या कर्त्तव्य निर्धारित करना चाहिए।

इन दिनों राजनीति के प्रसंग में सबसे प्रमुख चर्चा तृतीय विश्व युद्ध की है। प्रमाणों से प्रत्यक्ष है उसमें तीर तलवारों का नहीं, अणु आयुधों का-विषैली गैसों का और मारक किरणों का प्रयोग होगा। यदि ऐसा हुआ तो पक्ष और विपक्ष तो समान रूप से हारेंगे ही, साथ ही यह पृथ्वी भी प्राणियों के जीवित रहने योग्य नहीं रहेगी। ऐसे सर्वनाश के उपरान्त किसका क्या प्रयोजन सिद्ध होगा। ऐसे कदम तो उन्मादी ही उठा सकते हैं। हमें सोचना होगा कि मनुष्य विज्ञान और कूटनीति में कितना ही आगे क्यों न बढ़ गया हो, ऐसे आत्मघाती कदम उठाने से पूर्व हजार बार सोचेगा और ऐसा न करेगा कि जिसमें विपक्ष के साथ-साथ अपना अस्तित्व भी सदा सर्वदा के लिए समाप्त हो जाय।

एक कूटनीतिक अनुमान यह है कि जापान की तरह अणु शक्ति का सीमित प्रहार करके विपक्ष को घुटने टेकने के लिए विवश किया जाय और अपनी वरिष्ठता की छाप छोड़कर उससे मनमाना लाभ उठाया जाय? समझा जाना चाहिए कि जापान वाली घटना की अब पुनरावृत्ति हो सकना कठिन है। तब एक ही आक्रमणकारी शक्ति थी, जो अस्त्र थे वे एक के ही हाथ में थे। अब वे इतने अधिक देशों के पास इतनी, अधिक मात्रा में हैं कि सिलसिला आरम्भ होते ही उसकी शृंखला चल पड़ेगी और फिर मूँछ नीची करने की अपेक्षा मिट जाने या मिटा देने की अधीरता अहन्ता पूरे जोश खरोश भरे प्रतिशोध के साथ चल पड़ेगी।

अब सीमित युद्ध नाम की कोई सम्भावना नहीं रही। अब सर्वनाश या सहजीवन इन दो के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है। अब आकाश-

पाताल में यकायक झपट्टा मारने और शिकार को पंजों में दबाकर उड़ने की सम्भावना भी नहीं रही और न समुद्र के गर्भ में अग्नि बाण छोंड़े जा सकते हैं। अस्त्र भण्डारों से भी बढ़कर अब गुप्तचरों के जाल बिछे हुए हैं। किसी योजना को आकस्मिक कार्यान्वित कर बैठने और सामने बाले को पता न चलने देने अथवा सभी गुप्त प्रकट प्रहार क्षेत्रों को काबू में कर लेने की बात भी नहीं बनने वाली।

आतंक का सबसे बड़ा कारण है भय और अविश्वास। सामने वाले को आक्रमणकारी मानकर अपनी सुरक्षा की दुहाई देते हुए अस्त्र भण्डार बढ़ाने और युद्ध के लिए उपयुक्त क्षेत्र ढूँढ़ने के कुचक्र में आज के राजनेता उलझकर रह गये हैं। किन्तु इस कल्पना में अत्युक्ति की भरमार है। हर कोई अपनी सुरक्षा चाहता है, किन्तु आज की स्थिति में वह आशंकाओं का निवारण करने वाले उपाय अपनाकर ही कार्यान्वित किये जा सकते हैं। वास्तविकता यह है कि सामने वाले को डराने के लिए ही धमकी के रूप में यह आतंक गढ़ा जा रहा है। किसी के मन में भी मिटने या मिटाने का निश्चय नहीं है। यह तब होता जब स्वयं सुरक्षित रह सकने की कोई गुञ्जायश रही होती। जो ऐसी कल्पना करता है वह वस्तुस्थिति से अपरिचित रह रहा है।

यथार्थता यह है कि ऐसे वीभत्स रचने का कलंक कोई अपने सिर पर लेना नहीं चाहता। दूसरे की ओर से आक्रमण दिखाकर स्वयं चढ़ बैठने जैसा भी छद्म नहीं चल सकता है। ऐसी कल्पनाएँ सभी के मस्तिष्क में उठती और बबूले की तरह फूटती रहती हैं कोई इस निश्चय पर नहीं पहुँच पाता कि ऐसी किसी अनीति को अपनाकर विजय प्राप्त की जा सकी है।

सचाई यह है कि दोनों पक्ष ही डर रहे हैं और दोनों ही शान्ति चाहते हैं। इस वास्तविकता पर दैवी तत्वों की साक्षी स्वीकार की जा सकती है। हमारा पूरे साहस के साथ कथन है कि एक अधिक ईमानदार और साहसी पक्ष को अपनी ओर से एक पक्षीय पहल करनी चाहिए। दोनों की सहमति की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह तब तक सम्भव नहीं जब तक कि कोई एक बिना शर्त की पहल करने को तैयार न हो। ऐसा हो तो दूसरे पक्ष को झक मारकर झुकना पड़ेगा। विश्व शान्ति को जो अकारण नष्ट करने

का साहस करेगा वह अपने मित्रों को भी शत्रु बना लेगा और छद्म के सहारे देर तक जीवित न रह सकेगा।

जापान पर एकपक्षीय अणु प्रहार होने का परिणाम यह हुआ कि संसार भर की सहानुभूति उस पीड़ित के साथ हो गई। न्याय बचाने के लिए उसे स्वतन्त्र भी करना पड़ा और ऐसा समझौता जो सस्ते में नहीं हो गया। जिस दिन आइन्स्टीन ने जापान पर अणु बम गिरने का समाचार सुना उसी दिन से वे अत्यन्त दु:खी और गम्भीर देखे गये। विज्ञान क्षेत्र को नमस्कार कर दिया। वायलिन बजाया और नाव में घूमकर दिल बहलाया करते थे। अधिक बीमार पड़ने पर डाक्टरों की एक छोटा आपरेशन करने की बात को भी अस्वीकार कर दिया और जल्दी शरीर छूटने की कामना की। मरते समय उनने कड़ी हिदायत की कि उनका कोई स्मारक न बनाया जाय। यह प्रकारान्तर से विजेता पक्ष की हार है।

आगे भी लोकमत जीवित रहेगा। स्रष्टा का लम्बा हाथ कार्यरत रहेगा। जो शान्ति के साथ-विश्व के मानव समुदाय के साथ खिलवाड़ करेगा वह चैन से न बैठ सकेगा और न विजय के लाभ से लाभान्वित हो सकेगा। जीत उसकी होगी, सराहनीय भी वही होगा जो अपनी ओर से कदम बढ़ाकर-सुरक्षा की चिन्ता किये बिना इस विभीषिका को निरस्त करेगा और शान्ति का पक्षधर होने की बात कथनी से नहीं करनी में सिद्ध करेगा। जो भी बहादुर हो-जो भी विवेकशील हो उसे सामने वाले की प्रतीक्षा किये बिना एकाकी पहल का शुभारम्भ करना चाहिए। जो करेगा वह घाटे में न रहने पाये इसकी जिम्मेदारी महाकाल ने ली है।

मात्र राजनीति को ही नहीं इस निर्णय में उन्हें भी शामिल होना चाहिए जो युद्ध के उपकरण बनाते हैं और उसी व्यवसाय में धन कुबेर बनना चाहते हैं भले ही असंख्यों के प्राण जाँय और असंख्यों अनाथ बिलखें। यह व्यवसाय बड़ा घिनौना है और उससे भी बुरी बात यह है कि युद्ध का वातावरण बनाने के लिए आये दिन कहीं न कहीं कुछ न कुछ मार-काट मचाते रहा जाय। ऐसी स्थिति में ही दोनों पक्ष हथियार खरीदते हैं और चन्द व्यापारी मौत के सौदागर बनकर धनी बनते हैं।

इस वर्ग को भी हमारा निवेदन है कि समय रहते अपनी गतिविधियाँ बदल दें। अपने साधनों को एक ओर से समेट कर दूसरे कार्यों में लगायें। सृजन के अनेकानेक काम बाकी पड़े हैं। गरीबी, बेकारी, बीमारी, अशिक्षा से निपटने के लिए उपयोगी व्यापार हजारों हो सकते हैं। पशु पालन, सिंचाई, सफाई, बिजली, गृह उद्योग जैसे अगणित छोटे-बड़े काम मौजूद हैं जिनमें वह पूँजी लगाई जा सकती है जो विनाश के साधन विनिर्मित करने में लगी हुई है। अभी तो यही समझा जाता है कि यह धन कुबेर ही राजनेताओं पर दबाव डालकर-जहाँ तहाँ छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ खड़ी कराने के निमित्त कारण हैं।

जो हो समझदारी हर किसी को अपनानी चाहिए। विशेषतया जिनका अनाचार समूची मानवता के प्रति अपराध करता है। ऐसे लोगों के लिए ही यह कहा गया है कि-"जो सताता है वह सताया जायेगा जो मिटाता है वह मिटाया जायेगा।"

हमारी हार्दिक इच्छा यह है कि यह पंक्तियाँ उन शासनाध्यक्षों और उद्योगपतियों को पढ़ने को मिलें जो युद्ध के-विनाश के निमित्त अपने कौशल और साधन को नियोजित किये हुए हैं। काश, वे समय रहते इस सलाह को नहीं, चेतावनी को ध्यान में रख सकें तो उनकी दिशाधारा बदलेगी। रीति-नीति में आमूलचूल परिवर्तन होगा। वह परिवर्तन समूची मानव-जाति के भाग्य भविष्य का कायाकल्प कर सकने में समर्थ होगा। जिन्हें आज धरती पर रहने वाले शैतान समझा जाता है उन्हें बदली हुई परिस्थितियों में भगवान् कहा जायगा।

एक मार्ग पर चलने वाला प्रवाह रोककर यदि दूसरी दिशा में मुड़ेगा, तो उसका परिणाम चमत्कारी होगा। करोड़ों को जिस चक्की में परोक्ष रूप से पिस रहे हैं या पिसने जा रहे हैं उनके चेहरों की उद्विग्नता को यदि आशा, प्रगति और प्रसन्नता में बदला जा सके, तो जिनके शिर पर आज विनाश के नियोजन का कलंक है उन्हें सृजन का श्रेय भी मिलेगा। क्योंकि शक्तियाँ स्थिर तो रहेंगी नहीं। समुद्र में डुबोई भी नहीं जा सकेंगी उन्हें विनाश से विरत किया जाएगा तो सृजन में निरत हुआ आयगा। विज्ञान वैभव कौशल

की क्षमताएँ यदि मानव जाति के अभिनव सृजन में-उत्कर्ष के उपयुक्त साधनों में नियोजित की जायेंगी, तो वातावरण कुछ से कुछ हो जायेगा। नरक को स्वर्ग बनाना इसी को कहते हैं।

कहना चाहिए, तो शिष्टाचार वश कहा जा रहा है। वास्तविकता यह है कि यही करना होगा। इच्छा से भी और अनिच्छा से भी। स्रष्टा का व्यवस्थाक्रम और प्रकृति का सन्तुलन ऐसा है जिसमें समय-समय पर दुर्बुद्धिग्रस्त को सीधी राह पर खड़ा किया है। इस बार भी वे अपना काम करने और उलटों को उलटकर सीधा बनाने में लग पड़ी हैं। अच्छा हो प्रताड़ना और विवशता से बदलने की अपेक्षा दूरदर्शिता अपनाते हुए ही-सोचने का तरीका और काम करने का ढंग बदल लिया जाय।

*****

७. विश्व का नया स्वरूप उभरेगा

विग्रह के मूल कारण-

तृतीय विश्व युद्ध की तैयारी जिस कारण चल पड़ी और कटारें एक-दूसरे की छाती पर रखकर जिस कारण भिड़ गये उसका कारण है-गुटों का-वर्गों का शासन। यह कब से चला, इसकी चर्चा निरर्थक है। पर होता यह रहा है कि समर्थ गुटों ने अपने कब्जे में जमीन को और वहाँ रहने वाले दुर्बल लोगों का शोषण आरम्भ कर दिया। संक्षेप में यही शासन तंत्र है। आदिम काल से लेकर उसका स्वरूप थोड़े हेर-फेर के साथ ऐसा ही चलता रहा है।

जापान पर दो बम गिराने और उससे आत्म-समर्पण करा लेने में जिन शासकों को उत्साह मिला, वे सभी उपरोक्त प्रकार के वर्ग शासन के आधार पर चल रहे थे। यह पद्धति ही विष-बेल है। जब से यह चली है तभी से तत्कालीन साधनों के अनुरूप युद्ध होते रहे हैं और जब तक यह रहेगी युद्धों का कभी अंत नहीं होगा। आज चिंता अधिक इसलिए है कि अणु आयुद्धों से व्यापक विनाश की सम्भावना है। यदि वह टल भी जाय, तो भी दूसरे

साधनों से अगले दिनों युद्ध होते रहेंगे। कारण कि उसके मूल में समर्थ वर्गों द्वारा दुर्बल का शोषण उसकी आधारभूत विधि-व्यवस्था है।

यदि ऐसा न होता तो देशों का विभाजन भौगोलिक सुविधा के आधार पर हुआ होता। उसमें एक और विशेषता होती। पिछड़े समुदाय का वर्चस्व रहता। प्रगतिवान् वर्ग उन्हें ऊँचा उठाने और आगे बढ़ाने की अपनी जिम्मेदारी अनुभव करता। समर्थ लोग थोड़े होते हैं। असमर्थ अधिक। इसलिए बहुमत के मार्गदर्शन एवं सुधार परिष्कार की जिम्मेदारी प्रगतिवान् अल्पमत को उठानी पड़ती है। पर आज वैसा कहाँ है? मुट्ठी भर समर्थ लोग अपने बुद्धिबल, शासन बल, ज्ञानबल और साधनबल के सहारे जितने क्षेत्र पर चाहें कब्जा कर लेते हैं और उसे अपना कहने लगते हैं। यह जंगल कानून हुआ। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ हुई। देशों का वर्तमान सीमा विभाजन और उन पर गुटों को आधिपत्य यह है-संघर्षों का मूलभूत कारण। यह तो छीना झपटी हुई। जो जितना बलिष्ठ होगा वह उसी अनुपात में अपने से छोटों का डराने धमकाने में, शिकंजे में कसे रखने में सफल होगा।

सामन्त युग में यही होता रहा है। जिसके पास डकैतों का जमघट जितना अधिक हुआ वह उसी उत्साह से पड़ोसियों पर चढ़ दौड़ता था और उसके राज्य को लूट-खसोट के उपरान्त अपने में मिला लेता था। अब तरीके बदल गये हैं। अब लड़ाइयाँ इतनी खुली नहीं होतीं। उन पर सिद्धान्तवाद के आवरण उढ़ाये गये होते हैं। फिर भी तथ्य एक ही है कि समर्थ वर्ग, पड़ोसी अथवा दूरवर्ती देशों को किसी न किसी बहाने अपने चंगुल में फँसाये रखना चाहते हैं ताकि उन्हें अधिक शोषण करने और अपने वर्ग को अधिक समर्थ बनाये रहने का अवसर मिलता रहे।

मुद्दतों से देशों की सीमाएँ कुछ ऐसी बन गई है जो हमें स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। जो जहाँ कब्जा किए बैठा है वही उसका न्यायोचित अधिकार प्रतीत होता है। पर यदि वस्तुतः न्याय एवं औचित्य को ध्यान में रखते हुए समीक्षा की जाय तो बात कुछ दूसरी ही प्रतीत होती है। धरती पर उत्पन्न होने वाले सभी धरती पुत्रों के लिए उत्पादन में समान भागीदारी कहाँ है? वरिष्ठ लोग अपनी सुख-सुविधाओं को स्वेच्छा से कम करके कनिष्ठों

को अधिक सुखी समुन्नत बनाने के लिए प्रयत्नशील कहाँ रहते हैं ? यदि ऐसा रहा होता तो गुट बनाने और क्षेत्रों पर कब्जा करने की आवश्यकता ही क्यों पड़ती ? सभी भूमि गोपाल की समझी जाती और उससे हर क्षेत्र से हर किसी को समान लाभ लेने का अवसर मिलता। देशों के नाम पर विभाजन रेखाएँ न होती। यदि होती तो उसके निर्धारण में वर्गवाद को नहीं भौगोलिक यातायात आदि की सुविधाओं को ध्यान में रखा गया होता।

खनिज तेल मध्य पूर्व के कुछेक अरब देशों में बड़ी मात्रा में निकलते हैं। आधिपत्य उन्हीं मुट्ठी भर लोगों का है जबकि भूमि सबकी होने के कारण उस सम्पदा पर स्वामित्व सभी का होना चाहिए। अफ्रीका और अमेरिका की ढेरों जमीन खाली पड़ी है। जबकि चीन और भारत जैसे धनी आबादी वाले देशों को उसकी कोताही के कारण अनेकों असुविधाएँ सहनी पड़ती हैं। यह संसार एक परिवार होना चाहिए और उसकी भूमि सभी की भूमि। सभी उसके उत्पादन में समान लाभ उठायें। अनीति यहाँ से शुरू होती है कि किसी क्षेत्र के निवासी उस पर अपना आधिपत्य जमाते हैं और वहाँ के उत्पादनों को अपनी ही मुट्ठी में रखना चाहते हैं।

अनीति में सबसे बड़ी बुराई यह है कि बड़ा ताकतवर छोटे को सहन नहीं करता। फलत: किसी बड़े से कोई बड़ा बनता ही रहता है और छोटे को उदरस्थ करने के लिए मचलता रहता है। छोटे या बड़े युद्ध अब तक इसी कारण होते रहे हैं और यदि यह सिलसिला चलता रहा तो उनका अंत कभी भी नहीं होगा।

ऋषि की दृष्टि -

पिछले लेख में यह बताने का प्रयत्न किया गया था कि दैवी शक्तियाँ सीने पर गोली रखकर "पीछे हट-पीछे हट" कहने वालों से भी किसी न किसी आधार पर सामयिक राजी नामा करा देंगी। "आगे बढ़े तो खैर नहीं-आगे बढ़ें तो खैर नहीं" के उद्घोष दोनों ओर से हो रहे हैं। ऐसी दशा में जिन्हें अपनी हस्ती 'नेस्तनाबूद' नहीं करानी है, समझदारी से काम ले सकते हैं और बहादुरी के साथ पीछे हट सकते हैं। फिलहाल का युद्ध टल सकता है। हमारी दावेदारी और भविष्यवाणी सही सिद्ध हो सकती है कि युद्ध

सुनिश्चित रूप से टल जायेगा। निशाना सधी लगी हुई अन्तर्महाद्वीपीय मिसाइलें फिलहाल रुक जायेंगी। पर इससे होगा क्या? युद्ध अकेले बारूद से ही थोड़े लड़ा जाता है। असली युद्ध तो आर्थिक लड़ाई है। यह खाई वर्तमान देश विभाजन की सीमा के रहते यथावत् बनी रहेगी और कल न सही, परसों कोई नया स्वरूप लेकर इस प्रकार के न सही, उस प्रकार के युद्ध का मोर्चा खड़ा करेगी। बर्बादी एक तरह की न सही दूसरे तरह की होगी। फिर समाधान क्या हुआ?

अबकी बार समस्याओं का समाधान किश्तों में नहीं एक मुश्त ही होना है। अणु युद्ध ही नहीं रुकेगा, देशों की वह विभाजन रेखा भी हटेगी, जो वर्गों ने, गुटों ने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार कब्जा जमाकर बना ली है। वर्तमान नक्शे में जो देश जहाँ दिखाई देता है वहाँ उनमें से एक भी न रहेगा। एक 'विश्व राष्ट्र' का निर्धारण होगा और यदि उसकी प्रशासनिक, औद्योगिक यातायात सुविधा के कारण वर्गीकरण की आवश्यकता पड़ेगी, तो वह कट या बँट भी जाएगा।

यह सुनने और सोचने वालों को असम्भव जैसा लगता होगा? अमेरिका क्यों इतनी भूमि पर से कब्जा समेटेगा और रूस क्यों अपनी मित्र मंडली के इतने सदस्यों को ढील देगा। चीन क्यों अपने कब्जे के इतने क्षेत्र को वर्गीकृत करेगा? तेल वाले देश क्यों अपने उत्पादन में से दूसरों को हिस्सा देंगे? कदाचित कोई भी स्वेच्छा से इसके लिए तैयार न होगा। खासतौर से समृद्ध और समर्थ देश। गरीबों की वहाँ आवाज ही कौन सुनता है? उनके पास सामर्थ्य ही कहाँ है? जो विश्व के पुनर्विभाजन के लिए दबाव डाल सकें। वर्तमान परिस्थितियाँ यही बताती हैं कि ऐसा परिवर्तन जैसा इन पंक्तियों में लिखा जा रहा है, असंभव है।

पर इससे आदमी अपने समय में जो सोचता है, वही भविष्य में होता रहे यह आवश्यक नहीं। देशों की भौगोलिक, आर्थिक और बौद्धिक स्थिति में पिछले दिनों कितना परिवर्तन हुआ, इसे देखकर चकित रह जाना पड़ता है। प्रथम महायुद्ध के बाद दूसरे में और दूसरे के बाद तीसरे में क्या अन्तर

हुआ है, उसे यदि आर्थिक और राजनैतिक विभाजन की दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि इस दुनिया में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं। इतने आश्चर्यजनक जो कदाचित उस समय के लोगों के गले बिलकुल भी न उतर सकते होंगे। हिटलर के उत्थान और पतन के दिनों वाली बात पर ही दृष्टि डाली जाय तो प्रतीत होगा कि उन थोड़े दिनों में ही इतना कुछ योरोप में बदला, जिसकी इससे पूर्व किसी ने कल्पना तक न की होगी।

युद्धों का निराकरण अबकी बार अन्तिम रूप से किया जाने वाला है। अणु बम रुकें और रासायनिक बम न चलें, ऐसी छोटी हेरा-फेरी के लिए दैवी शक्तियों को बीच में क्यों पड़ना था। इतना तो आदमी की मोटी अकल भी कर सकती है। यदि भगवान् को हस्तक्षेप करना है कि युद्ध टल जाय, तो उन्हें उतना और भी करना पड़ेगा कि देशों का वर्तमान सीमा विभाजन और उसका आधारभूत कारण भी हटे। अगले दिनों धरती का नक्शा तो यही रहेगा पर उसमें जो अनेकों छोटे-बड़े देश दिखाई पड़ते हैं वे न रहेंगे। एक विश्व की-एक राष्ट्र की कल्पना तो मुद्दतों से की जाती रही है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" का प्रतिपादन तो मुद्दतों से होता रहा है, पर अबकी बार सचमुच ही कार्यान्वित होकर रहेगा।

समर्थ गुटों में एक ही सबसे बड़ा गुट है-पिछड़ा वर्ग जो ज्ञान की दृष्टि से-साधनों की दृष्टि से अनुभव और अभ्यास की दृष्टि से पीछे पड़ता है। बहुमत इसी का है। अस्तु वर्चस्व भी इसी का होना चाहिए। सम्पत्तिवान्-बुद्धिमान संख्या की दृष्टि से अल्पमत हैं, पर वे वर्चस्व की दृष्टि से भारी पड़ते हैं। बड़ों को छोटे बच्चे सँभालने पड़ते हैं। इस दृष्टि से अब तथाकथित बड़ों को नये ढंग से सोचना पड़ेगा। उन्हें संख्या की दृष्टि अधिक, किन्तु क्षमता की दृष्टि से स्वल्प वाले जनसमुदाय को वैसे ही सँभालना होगा जैसे कि अभिभावक अपने कई छोटे बच्चों को सँभालते और समर्थ बनाते हैं। अब उन्हें कमजोरी की-विवशता का लाभ उठाने की अभ्यस्त नीति का एक प्रकार से परित्याग ही करना पड़ेगा।

परिवर्तन का दैवी चक्र -

दैवी कृतियों को चमत्कार कहा जाता है। वह घोर अन्धेरे के बीच न जाने कहाँ से सूर्य का गरमागरम गोला निकाल देते हैं। चिर अभ्यास में आ जाने के कारण वे अजनबी प्रतीत नहीं होते। पर वस्तुत: है तो सही। आकाश में न जाने कहाँ से बादल आ जाते हैं और न जाने किस प्रकार बरस कर सारा जल जंगल एक कर देते हैं। यह अचम्भा ही अचम्भा है। सर्वनाशी युद्ध की खिंची हुई तलवार यदि म्यान में वापस लौट सकती हों, तो समझदारी को अपनी जानकारी में एक बात और भी सम्मिलित करना चाहिए कि देशों का वर्तमान विभाजन कारणों की दृष्टि से भी और परिणामों की दृष्टि से भी जितना अस्वाभाविक और अहितकर है, उसे बदलना पड़ेगा।

यह बदलाव इस दृष्टि से नहीं होगा कि कौन सा गुट कितना समर्थ है और मांस का कितना बड़ा टुकड़ा उखाड़ ले जाता है। वरन् इस दृष्टि से होगा कि आदमी को आखिर इसी धरती पर रहना है। चैन से रहना है। देर तक रहना है। यदि सचमुच ऐसा ही है तो रोज-रोज की खिच-खिच करने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा है कि एक बार बैठकर शान्त चित्त से विचार कर लिया जाय और जो कुछ भी भला-बुरा निश्चित करना हो कर लिया जाय। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि किश्तों में (एक-एक करके) नहीं एक मुश्त फैसला होना है।

आदमी खण्डित नहीं रहेगा। एक जाति, वर्ग, लिंग की दीवारों में उसे खण्डित नहीं रखा जा सकता। इस प्रकार भूमि के टुकड़े इस दृष्टि से मान्यता प्राप्त नहीं कर सकते कि किस समुदाय ने कितने क्षेत्र पर किस प्रकार कब्जा किया हुआ है। पुरातन की दुहाई देने में अब कोई लाभ नहीं। चिर पुरातन चिर नवीन में परिवर्तित किया जाना है। जब धरती बनी और आदमी उगा तब देश जाति की कोई क्षेत्रीय विभाजन रेखा नहीं थी। आदमी अपनी सुविधानुसार कहीं भी आ जा सकता था। जहाँ जीवनोपयोगी साधन मिलते थे, वहीं पर रम सकता था। आदमी की आदत समेटने की है खदेड़ने की नहीं। इसलिए उसने परिवार मुहल्ले,

गाँव बसाना आरम्भ किया। अब क्या ऐसी आफत आ गयी जो आपस में मिलजुलकर नहीं रहा जा सकता, मिल बाँटकर नहीं खाया जा सकता। जो अधिक समेटने की कोशिश करेगा वह ईर्ष्या का भाजन बनेगा और अधिक घाटे में रहेगा। जिसके पास अधिक है वह ईश्वर का अधिक प्यारा है, अधिक पुण्यात्मा या अधिक भाग्यवान् है, यह कथन, प्रतिपादन अब अमान्य ठहरा दिये गये हैं।

बात कठिन है। युद्ध का रुकना भी कठिन है। जिसे इस कठिनाई से सरल हो जाने पर विश्वास हो, उसे उसी मान्यता में एक कड़ी और भी जोड़नी होगी कि संसार का नया नक्शा और नया विधि-विधान बनेगा। यह पुरातन कलेवर तो बहुत पुराना हो गया है। उसकी चिन्दियाँ और धज्जियाँ उड़ गयी हैं। उसे सीं-सिवा कर काम नहीं चल सकता। यह बहुत छोटी दुनियाँ का है। अब वह (दुनिया) तीन वर्ष की (बच्ची) नहीं रही, तेईस वर्ष की (युवती)हो गयी है। इसलिये समूचे आच्छादन को नये सिरे से बदलना पड़ेगा।

शासनाध्यक्षों को नये ढंग से सोचने के लिए हम विवश करेंगे कि वे लड़ाई की बात न सोचें। बढ़े हुये कदम वापस लौटायें। खुली तलवारें वापस म्यान में करें। इसके साथ ही मनीषियों को यह मानने के लिए विवश करेंगे कि दुनिया के वर्तमान गठन को अनुपयुक्त घोषित करें और हर किसी को बतायें कि चिरपुरातन ने दम तोड़ दिया और उसके स्थान पर नित नवीन को अब परिस्थितियों के अनुरूप नूतन कलेवर धारण करना पड़ रहा है। एक दुनिया-एक राष्ट्र की मान्यता अब सिद्धान्त क्षेत्र तक सीमित न रहेगी। उसके अनुरूप ताना-बाना बुना जाएगा और वह बनेगा जिसमें विश्व की एकता-विश्व मानव की एकता का व्यवहार दर्शन न केवल समझा वरन् अपनाया भी जा सके। इसके लिये विश्व चिन्तन में ऐसी उथल-पुथल होगी, जिसे उल्टे को उलट कर सीधा करना कहा जा सके।

*****

८. जनसंख्या की समस्या भी सुलझानी होगी

अपने पास समय की कुछ विषम समस्याएँ हैं, जिनके संबंध में उन लोगों की चिंता गहरी होती जाती है, जो मात्र अपनी उदरपूर्ति तक सीमित नहीं रहते, वरन, समाज की, विश्व की स्थिति के संबंध में भी अनुमान लगाते और उसमें आवश्यक मोड़ देने का प्रयत्न करते हैं।

इन दिनों प्रत्यक्ष और सुनिश्चित समस्याओं में सबसे बड़ी है जन-संख्या वृद्धि की समस्या। विचारशील वर्ग इससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं को समझने लगा है, किन्तु अशिक्षित, अनगढ़ वर्ग के लिए इसमें कुछ नया सूझता ही नहीं। पड़ौसियों, संबंधियों के यहाँ बच्चे होते और पलते रहते हैं, फिर हमीं क्यों चिन्ता करें? यह सोचना ऐसा ही है, जैसा यह समझना कि रोज असंख्यों व्यक्ति बीमार पड़ते और मरते रहते हैं, फिर हमें ही स्वस्थ रहने और जीवन की दिशा धारा बनाने की क्या आवश्यकता है?

एक बहुत पुरानी बात है, लारेन्स ने एक बेकार मित्र की आर्थिक चिन्ता को देखते हुए उससे मजाक में कहा था कि किसी ऐसी विधवा से विवाह कर लो, जिसके पाँच-छः बच्चे हों। वे कमाते और तुम दोनों को खिलाते रहेंगे। पति पत्नी बैठे ठाले मजे में समय गुजारा करोगे। वह समय वास्तव में था ही ऐसा। जंगलों और जमीनों की कमी नहीं थी। पशु चराने, घास खोदने, लकड़ी बीनने और चिड़ियाँ-मछली मारने जैसे छोटे-छोटे काम करने पर भी बच्चे कुछ न कुछ कमा लाते थे। उस कमाई के बल पर अधिक बच्चों वाला अधिक नफे में रहता था। न स्वार्थ थे, न स्वार्थों के बीच टकराव। सहयोगपूर्वक साथ रहने में ही सबको भलाई दीखती थी, इसलिए उस प्रकार की जिन्दगी पीढ़ियों तक कटती रहती थी।

पर अब वे परिस्थितियाँ बिलकुल नहीं रहीं। जमीन के चप्पे-चप्पे पर लोगों ने कब्जा कर लिया है। खाली कही जा सकने वाली ऐसी जमीन कहीं नहीं है जिसके आधार पर लाखों लोग अनायास ही गुजारा कर लेते थे। किसी गृहस्थ को किसी बात की चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। बड़ी

आबादी के लिए नये झोंपड़े बनाने होते थे, तो उसके लिए भी बाँस, फूस, लकड़ी उन्हीं सुविस्तृत सार्वजनिक जंगलों से मिल जाती थीं। पीढ़ियाँ इतनी सशक्त चली आती थीं, कि परिवार-मोटा अन्न खाकर ही खुली वायु के सहारे मोटा तगड़ा बना रहता था। पर अब वैसा कहाँ है ?

कभी भेड़ बकरी पालने की तरह बच्चे बढ़ाना भी एक कमाऊ उद्योग रहा होगा। पर अब तो उसमें घाटा ही घाटा है। उपयुक्त वस्त्र-बिस्तर, स्कूली शिक्षा, दवा-दारू, विवाह-शादी, धंधा-व्यवसाय बनाने में ढेरों धन खर्च होता है। फिर भाई-भाई परस्पर प्रतिद्वन्द्वी और ईर्ष्यालु बनकर रहते हैं। सहयोग के स्थान पर उपेक्षा ही बरतते हैं। उनके बँटवारों की, दुर्गुणों की, बुरी आदतों की समस्याएँ आये दिन उठती और बढ़ती रहती हैं। जो अपनी ही समस्याओं को नहीं सुलझा पाते वे माँ-बाप की सेवा क्यों करेंगे ? यही दृश्य चारों ओर दीखते भी हैं। जिसके जितने अधिक बच्चे हैं, वह उतना ही अधिक चिन्तित, दुःखी और कर्जदार पाया जाएगा।

नये जमाने में मान्यताएँ सुधारने के यह नये तथ्य अब धीरे-धीरे हर समझदार के मन में बैठने लगे हैं। जिन्हें प्रसव वेदना का भार लाद कर पत्नी का स्वास्थ्य चौपट करने में, अपने ऊपर पहाड़ जितना बोझ लादने में, बच्चों का भविष्य बिगाड़ने में हया शर्म नहीं है वे ही बच्चे जनने की खुशियाँ मनाते और बधाइयाँ बाँटते देखे जाते हैं। जिनमें थोड़ी भी समझदारी का अंश है, वे गृहस्थी बसा लेने पर भी प्रजनन संकट को टालने का ही प्रयत्न करते हैं।

मान्यताएँ सुधरेंगी -

भविष्य में समझदारी बढ़ेगी और लोग नफा नुकसान का-संभव असंभव का अनुमान सही रीति से लगाने लगेंगे, तब उन्हें किसी के प्रचार से प्रभावित होकर नहीं अपने स्वविवेक के आधार पर ही यह निश्चय करना पड़ेगा कि बहुप्रजनन विपत्ति को प्रत्यक्ष निमंत्रण देना है। समय की विकटता जब अधिक बच्चे न पैदा करने के लिए लोगों को बाधित करेगी, तो वे इस आग में हाथ डालने से स्वयं ही रुकेंगे।

लड़के अपने वृद्ध माँ-बाप की सेवा कर सकते हैं और उनकी पत्नियाँ उनके लालन पालन में कोई बाधा नहीं डालतीं तो इसमें ही क्या बुरी बात

है, कि समर्थ लड़कियाँ अपने असमर्थ अभिभावकों की सेवा सुश्रूषा करें और पति के भाई बहिनों की तरह पत्नी के छोटे भाई बहन भी उस खाते पीते परिवार में अपना आश्रय प्राप्त करें। जब लड़की और लड़के का कोई अन्तर न रह जाएगा, तो इस वहम के दूर होने में भी कोई कठिनाई न रहेगी कि पुत्री नहीं पुत्र ही होना चाहिए। सच तो यह है कि लड़कियाँ सौम्य प्रकति की होने तथा स्वतंत्र परिवार बसा लेने के कारण अभिभावकों के लिए चिन्ता का विषय नहीं बनती वरन् हँसने खेलने के दिन पूरे करके अपना दायित्व अपने ही कंधे पर सँभाल लेती हैं।

बढ़ती हुई मँहगाई में अपना निज का निर्वाह ही भारी पड़ता है। फिर बच्चों का बोझ बढ़ा कर कमर तोड़ संकट आमंत्रित करना किसे पसन्द आवेगा ? अगले दिनों यह समझदारी बढ़ेगी। बढ़ती ही चलेगी। जीवनोपयोगी वस्तुओं की कमी के रहते यह संभव न होगा कि कोई संतान बढ़ाये और चैन से दिन गुजारे। तथ्य समझ में आयेंगे तो लोग इसका उपाय भी सोच लेंगे कि ब्रह्मचर्य न रह पाने पर भी, विवाह व्यवस्था बना लेने पर भी किस प्रकार प्रजनन से बचा जा सकता है। यह कुछ कठिन नहीं, अति सरल है। इस संबंध में तनिक -सी सतर्कता भर से परिवार का सीमा बंधन हो सकता है, भले ही इस सन्दर्भ में किसी औषधि या उपकरण का उपयोग न किया जाय।

मनुष्य समय की अवज्ञा करने की हठवादिता से जब विरत नहीं होता तो प्रकृति उसका इलाज करती है। जीवनोपयोगी वस्तुओं की कमी, कुपोषण, रोग निरोधक-क्षमता का ह्रास, समस्याओं से उद्विग्न मन जैसी अनेकों समस्यायें मिल कर मनुष्य को अशक्त, अपंग, रुग्ण-पीड़ित रहने के लिए बाधित करेंगी और वे बेमौत मक्खी, मच्छरों की तरह मरेंगे।

इसके अतिरिक्त उदारता का एक क्रम दूसरा भी चलेगा कि धनी और भावनाशील स्वयं तो बच्चे न पैदा करें पर अनगढ़ लोगों की अवांछनीय सन्तानों को पालने-पोसने, उनके साथ खेलकर मन बहलाने की नई पुण्य प्रक्रिया अपनायें। यह ज्यादा अच्छा है कि हट्टे-कट्टे लोगों को वंश और वेश के नाम पर पाखंडो के सहारे लूटमारी करते रहने को रोक कर बढ़े हुये बच्चों के पालने

और उन्हें सुयोग्य बनाने का नया परमार्थ कार्य चल पड़े। यह भी हो सकता है कि विधवाओं, परित्यक्ताओं को स्वावलम्बी बनाने के लिए ऐसे आधार खड़े किये जाँय जिससे उन्हें सदा आँसू बहाते हुये हेय जिन्दगी न जीनी पड़े।

आशा की जानी चाहिए कि समझने के प्रयत्न और प्रकृति के दबाव एक प्रकार की विवशता बनकर हर आदमी को सोचने के लिए बाधित करेंगे कि गृहस्थी बसाना यदि आवश्यक ही है, तो इन डैड-लाक जैसी स्थितियों में उसे किस प्रकार निर्वाह करना है?

कई मंजिले मकान बनेंगे। आँगन, छत, छप्पर पर खाद्य उगाये जायेंगे। रेलें, मोटरें दुमंजिली बनेंगी। सड़कें बनाने के लिए सुरंगे खोदी जायेंगी। ऊर्जा के लिए प्राकृतिक गैसों का, सूर्य ताप का, गोबर गैस का आश्रय लिया जायगा।

बेरोजगारी दूर करने के लिए थोड़ी-थोड़ी दूर पर छोटे शहर या बड़े कस्बे बसाने पड़ेंगे। गाँवों में बिखरी जमीन को समतल बनाकर उसके बड़े-बड़े फार्म बनेंगे जो सहकारी व्यवस्था के अन्तर्गत चल सकें। खाने की आदतें बदलनी पड़ेंगी। अन्न का स्थान कंद और शाक लेंगे। तिलहनों का पाउडर दूध का काम देगा। पशुओं को बड़े उद्योगों की श्रेणी में रखकर उनका लाभदायक व्यवसाय चल सकेगा। जमीन जब मनुष्यों के लिए ही कम पड़ेगी, तो पशुओं के लिए चारागाह कहाँ से आवेंगे? इससे तो अच्छा यह है कि जितनी भी जमीन बनाई जा सके उस पर जलाऊ लकड़ी या फल चारा देने वाले पेड़ लगाये जाँय। पशुओं और पेड़ों में से एक का चयन करना हो तो वृक्ष पहली श्रेणी में आते हैं और पशु दूसरी श्रेणी में। उनका मांस मँहगा होता है और हानिकर भी सिद्ध होता है।

अगले दिनों बढ़ती समस्याओं में सर्व प्रमुख है जनसंख्या की बढ़ोत्तरी। जमीन रबड़ की तरह खींचकर बढ़ाई नहीं जा सकती। अनगढ़ प्रजा बच्चे जने बिना रह नहीं सकती। ऐसी दशा में हमें अनेक उपाय सोचने पड़ेंगे जिस आगत विभीषिका से अगले दिनों किसी प्रकार आत्म-रक्षा की जा सके। यदि कोई उपाय कारगर न हुए, तो प्रकृति का विनाश-चलेगा और आबादी उतनी ही बच पावेगी, जितनी के लिए कि धरती पर गुंजाइश है। यह अपनी बुद्धिमानी पर निर्भर है कि संतुलन हँसते-हँसाते बुद्धिमतापूर्वक बिठायें या

रोते कलपते बाधित और विवश होकर। उस सीमा में रहें जिसमें कि रहने का औचित्य है।

समझदारी इसी के लिए दी गई कि उसके सहारे कठिनाइयों का हल खोजा जाय और प्रगति की दिशा में योजनाबद्ध कदम बढ़ाया जाय। आज इसी अवलम्बन को अपनाने की सबसे अधिक आवश्यकता है।

******

९. नारी की प्रतिभा उभरेगी-क्षमता निखरेगी

भेद बुद्धि अनैतिक है -

नर और नारी का मध्यवर्ती अन्तर कृत्रिम है। दोनों ही मनुष्य वर्ग के अविच्छिन्न अंग हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक एवं सहयोगी हैं। दोनों की अपनी-अपनी विशिष्टता एवं उपयोगिता है। एक के बिना दूसरे का काम नहीं चल सकता। एकाकी रहने पर दोनों ही अपूर्ण एवं खीज-असंतुष्टि अनुभव करते हैं और नीरसता, निराशा के दो पाटों के बीच आकर अनाज में रहने वाले घुन की तरह पिस जाते हैं।

दोनों अपने आप में समर्थ एवं स्वावलम्बी हैं। एक दूसरे की सेवा-सहायता, श्रद्धा और सद्भावना के आधार पर किसी को किसी के हाथों अपना स्वाभिमान बेचने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कोई किसी पर भौतिक क्षेत्र में आश्रित नहीं है, पर फिर भी पारस्परिक सद्भावना अर्जित करके अपनी श्रेष्ठता तथा प्रसन्नता को कई गुना बढ़ा लेते हैं। यह आदान-प्रदान विश्व-ब्रह्माण्ड की स्थिरता और गतिशीलता का आधार है। नर-नारी चेतना के पिण्ड और पुञ्ज होने के कारण परस्पर सहयोग से शोभा, सुन्दरता और उपयोगिता बढ़ा लेते हैं।

मानवी गरिमा की स्थिरता और अभिवृद्धि में नर-नारी का समान योगदान है। कोई किसी से न तो वरिष्ठ है, न कनिष्ठ। यह सदाशयता और सज्जनता ही है, जिसमें नम्रता और कृतज्ञता से प्रेरित होकर वे एक दूसरे से छोटे बनने का प्रयत्न करते हैं और समर्पित रहने में अनुभव करते हैं-संतोष,

गर्व और उल्लास। इस पारस्परिक सद्भाव के उत्पादन से किसी के ऊपर किसी का दबाव नहीं है और न इसमें हीनता के लिए कहीं कोई गुंजायश।

दोनों मिल जुलकर अपने-अपने हिस्से का काम करते हैं, तो भिन्नता एकता में परिणत होती है। गाड़ी दो पहियों पर चलती है। ताली दो हाथ से बजती है। यात्रा के निमित्त दोनों पैर उठते हैं। दो आँखों को, दो कानों को, दो नथुनों को, दो फेफड़ों, गुर्दों को परस्पर पूरक ही कहा जा सकता है। इनमें से एक रहे दूसरा न हो तो कुरूपता तो बनेगी ही, दोनों का काम एक को करने पर शक्ति का क्षरण भी अनावश्यक रूप से होगा।

दोनों के काम अलग-अलग हैं। किन्तु कोई पत्थर की लकीर नहीं है। आवश्यकतानुसार कामों को अदल-बदल भी सकते हैं। काम सो काम न उसमें कोई ऊँचा है न नीचा। न किसी का किसी क्षेत्र में छोटापन है, न बड़प्पन। सुविधा के लिए काम का विभाजन, वर्गीकरण किया जाता है। चलने में बायाँ पैर आगे उठता है और खाने में दाहिने ही हाथ की पहल होती है। इसमें न किसी कि इज्जत घटती है, न बढ़ती। जहाँ ऐसा भेदभाव पैदा हुआ, समझना चाहिए कि अनर्थ का बीजारोपण हो गया। इसका प्रतिफल बुरा ही होकर रहेगा।

जनसंख्या का आधा भाग नर है, तो आधा भाग नारी। प्रगति और अवगति के लिए दोनों समान रूप से जिम्मेदार हैं। यदि किसी की योग्यता को प्रतिबंधित किया जाता है, तो समझना चाहिए कि मानवी आचार संहिता का हनन हो रहा है। परस्पर प्रोत्साहन ही दिया जा सकता है, आगे बढ़ाने में सहयोग भी। यह कार्य प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा का उपहार देकर ही कराये जा सकते हैं। दोनों उदारता और सच्चाई भरे मन से एक दूसरे के लिए यह अनुदान प्रस्तुत करें और व्यक्तित्व को बलिष्ठ, समर्थ, प्रखर बनाने में सहयोगी भी बनें। गलतियों को हँसी में उड़ाते रहने और सेवाओं को अविस्मरणीय रखने से ही आपस की घनिष्ठता बनती और मजबूत गाँठ की तरह बँधती है।

पक्षपात मिटाना ही होगा -

इन सिद्धान्तों की पिछले दिनों उपेक्षा होती रही है। नर को स्वामी और

नारी को पालतू पशु का स्थान मिलता रहा है। सामाजिक न्याय की दृष्टि से भारी पक्षपात बरता जाता रहा है। नारी घूँघट निकाले, नर नहीं। नारी सती हो, नर नहीं। नारी को दहेज देना पड़े, नर को नहीं। नारी पिटे, नर नहीं। बिना संरक्षण के नारी घर से बाहर कदम न रख सके और नर स्वच्छंद विचरे। नर एक साथ कई विवाह कर ले, पर नारी विधवा होने पर भी नहीं। यह ऐसे प्रतिबंध हैं, जिन्हें न्याय और औचित्य की किसी कसौटी पर खरा नहीं माना जा सकता है। किन्तु फिर भी वे रहे हैं और आज भी पिछड़े क्षेत्रों में विशेष रूप से रह रहे हैं। इसका सीधा-सा परिणाम यह हुआ कि केवल पुरुष को ही पूरी गाड़ी धकेलनी पड़ी है। नारी को सहयोग कर सकने का अवसर ही नहीं मिला। फलतः उसकी प्रतिभा छीजती, घटती और गिरती गई। परिणाम समूचे समाज को सहना पड़ा। वह अर्ध विकसित बन कर रहा। अर्धांग पक्षाघात पीड़ित की तरह किसी प्रकार घिसटते हुए चला।

नारी को रमणी, कामिनी, भोग्या और काम कौतुक के लिए विनिर्मित समझा गया। रंग बिरंगे वस्त्र, आभूषण, शृंगार प्रसाधन, इसलिए उस पर लादे गये ताकि वह अधिक आकर्षक, उत्तेजक प्रतीत हो। लाल सिन्दूर लगाकर अपने को सधवा-किसी की सम्पत्ति होने की घोषणा करे। नख शिख की सुन्दरता और मांसलता के आधार पर उसका मूल्यांकन किया गया। रूपवती प्रिय लगी और सामान्य बनावट वाली तिरस्कृत होती रही। उनका अवमूल्यन और उपहास हुआ। इसका सीधा-सा तात्पर्य है कि जो कामुकता भड़का सके, अनिच्छा होने एवं अखरता रहने पर भी उस आदेश को शिरोधार्य करती रहे, उसे ही पतिव्रता माना जाय।

इस संदर्भ में शिक्षित-अशिक्षित, भारतीय योरोपीय सभी क्षेत्रों की नारियों की अपनी-अपनी कठिनाइयाँ हैं। किहीं को दबाव सहना पड़ता है तो किन्हीं को लुभावने आकर्षणों की सुनहरी जंजीर से बाँधा जाता है।

विचारणीय है कि क्या भविष्य में नारी को रबड़ की गुड़िया या कठपुतली की तरह ही जीवन-यापन करना पड़ेगा? क्या वह अपनी प्रतिभा का उपयोग, व्यक्तित्व को प्रखर और समाज को सम्मुनत बनाने में कभी भी न कर सकेगी? यदि ऐसा हुआ तो समझना चाहिए कि संसार पर लदा हुआ पिछड़ापन आधी मात्रा में तो अनिवार्य रूप से बना ही रहेगा।

नारी की एक और बड़ी भूमिका है-प्रजनन। वह मात्र प्रसव ही नहीं करती वरन् भावी पीढ़ी का स्तर भी विनिर्मित करती है। वह सच्चे अर्थों में भविष्य की निर्मात्री है। क्योंकि बालक माता के संस्कार लेकर ही जन्मते हैं और शैशव की सारी अवधि उसी के संरक्षण में गुजारते हैं। तद्नुसार उनके गुण, कर्म, स्वभाव का ढाँचा अधिकतर इसी अवधि में ढल लेता है। बाद में तो उस पर खराद होती रहती है।

इस संदर्भ में सबसे दुर्भाग्यपूर्ण वह मान्यता है जिसमें नारी का मूल्यांकन उसकी सुन्दरता-कामुकता के आधार पर किया जाता है। आज विवाह का प्रचलित अर्थ है-कामुकता की कानूनी छूट के रूप में नारी का प्रयुक्त होना। इस हेय मान्यता के कारण ही वह फुसलाई जाती है, बिकती है। व्यभिचार, बलात्कार की शिकार होती है। किसी विभाग में नौकर है, तो अफसरों के इशारे पर चलने में ही खैर मनाती है। प्रतिशोध करने पर अभियोगों और लांछनों से लदती है। कालगर्ल्स बनने से लेकर कैबरे डान्सों तक में, वेश्याओं के कोठों में उसकी दयनीय दुर्दशा देखी जा सकती है। भूली भटकी जहाँ-तहाँ नारी निकेतनों में भर्ती होती हैं। तलाक और गर्भपात की विवशता उसके लिए कितनी कष्टकर और आघातपूर्ण होती है, उसे भुक्तभोगी स्थिति में ही जाना जा सकता है। बाल विवाहों से उनका शरीर किस प्रकार खोखला और रोगी हो जाता है, इसकी जानकारी सर्वेक्षणकर्त्ताओं ने अनेक अवसरों पर प्रकट की है।

बदलना होगा दृष्टिकोण -

नारी को इस स्थिति से उबारना होगा। इसके लिए आवश्यक है कि वर्तमान कुदृष्टि, कामुक चिन्तन की शिकार होने से उन्हें बचाया जाय। समानता का वास्तविक तात्पर्य यह है कि मान्यता और भावना की दृष्टि से नर-नारी भाई की-बहिन बहिन की-या भाई बहिन की दृष्टि से भाई पास्परिक संबंधों को देखें। प्रेत पिशाच की तरह कामुकता को सिर पर न चढ़ी रहने दें। आँखो में शैतान की कुदृष्टि न घुसी रहे। भोग्या और उपभोक्ता का रिश्ता न रहे, कामुकता को न आवश्यक समझा जाय और न महत्त्व दिया जाय। पशुओं में प्रजनन अवधि आने पर मादा ही प्रथम प्रस्ताव करती है। नर बिना

अनुरोध के साथ-साथ जीवन भर रहने पर भी अपनी ओर से छेड़खानी का कभी कोई प्रसंग उपस्थित नहीं होने देता। यही प्रचलन मनुष्यों में भी रहे, तो शरीरों का ऐसा सर्वनाश न हो, जैसा कि इन दिनों होता रहता है। उन मानसिक विकृतियों से छुटकारा मिले जो उत्कृष्ट चिन्तन के लिए गुंजायश ही नहीं छोड़तीं। बलात्कार, व्यभिचार, अपहरण आदि की जो दुर्घटनाएँ आये दिन होती रहती हैं उनकी कोई संभावना या गुंजाइश ही न रहे।

सौन्दर्य देखने की-पुलकन की वस्तु है। उसे मरोड़ देने गला घोट देने के लिए नहीं सृजा गया है। देवियों की प्रतिमाएँ सुन्दर भी होती हैं और सुसज्जित भी। उन्हें मंदिरों में प्रतिष्ठित देखा जा सकता है। दृष्टि सदा मातृ भाव से सनी पवित्रता से ही भरी रहती है। यही दृष्टि हाड़ मांस की नारी के लिए भी रखी जा सकती है। ऐसी स्थिति में सच्चे प्यार की भावनाएँ बनती हैं और गिराने की नहीं अधिक विकसित करने की इच्छा होती है। इसी मनोभूमि से नर-नारी के बीच पारस्परिक स्नेह सौजन्य पनपता है और उनके सच्चे मन से मिलने पर ही एक और एक ग्यारह की उक्ति चरितार्थ होती है।

आज की विषम वेला में तो दाम्पत्य जीवन में और अधिक तप संयम बरतने की ही आवश्यकता है। हँसने मुस्कराने भर से काम क्रीड़ा की मानसिक पूर्ति हो जानी चाहिए। साथ-साथ रहने, काम करने, एक दूसरे को अधिक सुयोग्य बनाने, सम्मान देने, प्रशंसा करने में जो प्रसन्नता होती है उस पर घिनौनी कामुकता को निछावर किया जा सकता है।

अगले दिनों नारी को प्रतिबंधों, दबावों, तनावों, बंधनों से मुक्त करके सामान्य मनुष्य की तरह जीवनयापन करने की स्थिति में लाना होगा। उसे काम कौतुक से उबारकर व्यक्तित्व निखारने, प्रतिभा उभारने एवं योग्यता बढ़ाने के लिए समुद्यत करना होगा। यह समय की अनिवार्य आवश्यकता है। उसे साहित्यकारों, चित्रकारों, विज्ञापन वालों, फिल्म व्यवसायियों के लिए मनोरंजन और कमाई का साधन नहीं बनने देना चाहिए। उसे इस रूप में सज्जित-प्रदर्शित नहीं किया जाना चाहिए जिससे वह विलास की पुतली दीख पड़े और इस कारण हर ओर से विपदाओं के बादल टूटें।

अगले दिनों नारी को हर क्षेत्र में नर की समता करनी होगी, सहायक की समर्थ भूमिका निभानी होगी। पर यह संभव तभी है जब उसे कामुकता की नारकीय अग्नि में जलने और जलाने से बचाया जाय। अगले दिनों नारी का देवी स्वरूप निखरना है जिससे वह सर्वत्र सुख शान्ति की स्वर्गीय वर्षा कर सके। अध्यात्म क्षेत्र की यह जिम्मेदारी है कि आने वाले वर्षों में नारी को जन नेतृत्व हेतु आगे बढ़ाएँ।

*****

१०. कैसा होगा प्रज्ञायुग का समाज?

उभरेगी प्रज्ञा परम्परा -

हमने भविष्य की झाँकी देखी है एवं बड़े शानदार युग के रूप में देखी है। हमारी कल्पना है कि आने वाला युग प्रज्ञायुग होगा। 'प्रज्ञा' अर्थात् दूरदर्शी विवेकशीलता के पक्षधर व्यक्तियों का समुदाय। अभी जो परस्पर आपाधापी, लोभ- मोहवश संचय एवं परस्पर विलगाव की प्रवृति नजर आती है, उसको आने वाले समय में अतीत की कड़वी स्मृति कहा जाता रहेगा। हर व्यक्ति स्वयं में एक आदर्श इकाई होगा एवं हर परिवार उससे मिलकर बना समाज का एक अवयव। सभी का चिन्तन उच्चस्तरीय होगा। कोई अपनी अकेले की ही न सोचकर सारे समूह के हित की बात को प्रधानता देगा।

प्रज्ञायुग में हर व्यक्ति अपने आपको समाज का एक छोटा-सा घटक किन्तु अविच्छिन्न अंग मानकर चलेगा। निजी लाभ-हानि का विचार न करके विश्व हित में अपना हित जुड़ा रहने की बात सोचेगा। सबकी महत्त्वाकांक्षाएँ एवं गतिविधियाँ लोकहित पर केन्द्रित रहेंगी न कि संकीर्ण स्वार्थपरता पर। अहंता को परब्रह्म में समर्पित कर आध्यात्मिक जीवन-मुक्ति का लक्ष्य अगले दिनों इस प्रकार क्रियान्वित होगा कि किसी को अपनी चिन्ता में डूबे रहने की- अपनी ही इच्छा पूर्ति की-अपने परिवार जनों की प्रगति की न तो आवश्यकता अनुभव होगी, न चेष्टा चलेगी। एक कुटुम्ब के सब लोग जिस प्रकार मिल-बाँटकर खाते और एक स्तर का जीवन जीते हैं वही मान्यता व दिशाधारा अपनाये जाने का औचित्य समझा जायेगा।

ऋषि-मुनिगण परिवार बसाकर पर्ण कुटियों में रहते थे, लेकिन समाज से कटे हुए नहीं थे। उन दिनों लोभ-मोह के बन्धनों को काटने के प्रयास योग साधना-तप पुरुषार्थ द्वारा सम्पन्न होते थे एवं सुनियोजन सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन हेतु होता था। अब उसी कार्य को चिन्तन की उत्कृष्टता, जीवनक्रम के निर्धारण एवं वातावरण के दबाव से सम्पन्न कराया जाएगा। सभी वैसा ही जीवन जीकर सहकारी प्रयासों में निरत होंगे।

प्रज्ञा युग के नागरिक बड़े आदमी बनने की नहीं- महामानव बनने की महत्त्वाकांक्षा रखेंगे। सच्ची प्रगति इसी में समझी जाएगी कि गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से किसने अपने आपको कितना श्रेष्ठ-समुन्नत बनाया। कोई किसी के विलास वैभव की प्रतिस्पर्धा नहीं करेगा। वरन् होड़ इस बात की रहेगी कि किसने अपने आपको कितना श्रेष्ठ, सज्जन एवं श्रद्धास्पद बनाया। वैभव इस बात में गिना जायेगा कि दूसरे को अनुकरण करने के लिए कितनी कृतियाँ और परम्पराएँ विनिर्मित कीं। आज के प्रचलन में सम्पदा को सफलता का चिह्न माना जाता है। अगले दिनों यह मापदण्ड सर्वथा बदल जाएगा और यह जाना जायेगा कि किसने मानवी गौरव गरिमा को किस प्रकार और कितना बढ़ाया?

शरीर यात्रा के निर्वाह साधनों के अतिरिक्त प्रज्ञा युग का मनुष्य दूसरी आवश्यकता अनुभव करेगा- सद्ज्ञान की। इसके लिए आजीविका उपार्जन एवं लौकिक जानकारियाँ देने वाली स्कूली शिक्षा पर्याप्त न मानी जाएगी। वरन् यह खोजा जायेगा कि दृष्टिकोण को परिष्कृत करने-सद्गुणों की परम्परा बढ़ाने एवं व्यक्तित्त्व को प्रखर-प्रामाणिक बनाने के रीति-नीति सीखने, अपनाने का अवसर कहाँ से किस प्रकार मिल सकता है। इस प्रयोजन के लिए स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन की उच्चस्तरीय दिशाधारा कहाँ से मिल सकती है। इसे खोजने, पाने का प्रयास निरन्तर जारी रखा जायेगा, यह कार्य ईश्वर उपासना, जीवन साधना एवं तपश्चर्या की सहायता से भी हो सकता है। ऋषिकल्प- महामानवों का सान्निध्य, सद्भाव और अनुदान तो इस प्रयोजन के लिए सर्वोपरि रहेगा ही।

बदलेगी जीवन दृष्टि -

संचित कुसंस्कारिता के शमन प्रतिरोध, निराकरण पर प्रज्ञा युग के विचारशील व्यक्ति पूरा-पूरा ध्यान देंगे। संयम बरतेंगे और सन्तुलित रहेंगे। शौर्य, साहस का केन्द्र-बिन्दु यह बनेगा कि किसने अपने दृष्टिकोंण, स्वभाव,रुझान एवं आचरण में कितनी उत्कृष्टता का समावेश किया। प्रतिभा, पराक्रम एवं वैभव को इस आधार पर सराहा जायेगा कि उस उपार्जन का जनकल्याण एवं सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन में कितना उपयोग हो सका। विचारशील लोग इसी आधार पर आत्म-निर्माण करेंगे और पुरुषार्थ का क्षेत्र चुनते समय निजी सुख- सुविधाओं की पूर्ति का नहीं विश्व उद्यान को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने की महानता को महत्त्व देंगे। अमीरी को नहीं मानवी गरिमा को अपनाया, सराहा जायेगा। संकीर्ण स्वर्थपरता में संलग्न व्यक्ति तब प्रतिभा के बल पर कहीं कोई श्रेय सम्मान प्राप्त नहीं करेंगे वरन् भर्त्सना के भाजन बनेंगे।

श्रमशीलता को बेइज्जती या दुर्भाग्य का चिह्न न समझा जाय वरन् प्रतिभा-विकास- उपलब्धियों का उपार्जन एवं प्रखरता का परिचायक माना जाय तो ही भौतिक विकास की सम्भावना सुनिश्चित हो सकती है। श्रम का असम्मान परोक्ष रूप से दरिद्रता एवं पिछड़ेपन का आह्वान है। निठल्लेपन के साथ एक दु:खद दुर्भाग्य और जुड़ा रहता है। "खाली दिमाग शैतान की दुकान" की युक्ति चरितार्थ करता है। जिनके पास काम नहीं होगा उनका दिमाग दुश्चिन्तन में और शरीर दुर्व्यसनों में निरत होगा। ठाली लोगों में क्रमश: दुर्गुण बढ़ते हैं। समय काटने के लिए वे दोस्तों की तलाश में रहते हैं और जो भी उनके चंगुल में फँस जाता है उसे अपने जैसा बना लेते हैं। नई पीढ़ी की बर्बादी में इन दिनों दोस्तबाजी का एक प्रकार से भयानक दुर्व्यसन बन चला है। आवारा लोगों की चाण्डाल चौकड़ी ही इन दिनों मित्रमण्डली कहलाती है। यह समस्त अभिशाप खाली बैठने के हैं। इस तथ्य को जितनी गम्भीरतापूर्वक समझा जा सके उतना ही उत्तम है।

प्रज्ञा युग में चिन्तन, आचरण एवं व्यवहार के सभी पक्षों में काया-कल्प जैसा हेर-फेर होगा। यही युग परिवर्त्तन है। इस परिवर्त्तन का आधार दूरदर्शी विवेकशीलता का कसौटी पर कसकर अपनाया गया औचित्य ही

होगा। पिछले दिनों क्या सोचा, माना या किया जाता रहा है। इसे भावी रीति-नीति का आधार नहीं माना जाएगा वरन् तर्क, तथ्य, प्रमाण, न्याय एवं लोकहित की हर कसौटी पर कसने के उपरान्त जो खरा पाया जायेगा उसी को अपनाया जायेगा। न किसी को भूत का आग्रह होगा और न कोई भविष्य की अवज्ञा करेगा। वर्तमान का निर्धारण करते समय आज की आवश्यकता और उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना को ही महत्त्व दिया जाएगा। यह निर्धारण पूर्वाग्रहों से मुक्ति पाये हुए अन्तःकरण ही कर सकेंगे। अगले दिनों उन्हीं को युग ऋषि माना जायेगा और उन्हीं का निर्धारण लोक-मानस द्वारा श्रद्धापूर्वक अपनाया जायेगा।

महत्त्वाकांक्षाओं का सही आधार है पवित्रता एवं प्रखरता की उच्चस्तरीय अभिवृद्धि। निजी जीवन में गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से अधिक उत्कृष्ट बनना और लोकोपयोगी कार्यों में सामने अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करना किसी व्यक्ति की गौरव-गरिमा का मानदण्ड बनेगा। लोग सादा जीवन-उच्च विचार की भावनाओं से प्रेरित होंगे। जीवन की गरिमा एवं सफलता इस बात में अनुभव करेंगे कि आदर्शवादी प्रगति में कितना साहस दिखाया तथा पराक्रम किया गया। अगले दिनों लोग अपनी चतुरता व सम्पदा तथा सफलता का उद्धत प्रदर्शन करने को छछोरपन मानेंगे और उच्चस्तरीय प्रतिभा का विकास एवं सदुपयोग करने में सन्तोष तथा सम्मान अनुभव करेंगे।

नीतियुक्त मर्यादित जीवन -

युग परिवर्तन का मूलभूत आधार होगा प्रस्तुत लोक-मानस के अवांछनीय प्रवाह को मोड़-मरोडकर सही सीधी-सी दिशा में गतिशील किया जाना। इसमें से सर्वप्रथम उस व्यक्तिवादी लोभ लालच पर प्रहार होगा जो अनेकानेक स्तर की महत्त्वाकांक्षाएँ- ललक-लिप्साएँ उत्पन्न करता है। दूसरों की तुलना में अधिक सुविधा साधन समेटने और बड़प्पन दिखाने वाले सरंजाम जुटाने में लिप्त रहना ऐसी दृष्टि है जो चिन्तन और चरित्र में बेतरह निकृष्टता भरती जाती है। वासना, तृष्णा, अहन्ता पर आधारित भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण उन्हीं से बन पड़ते हैं जिनके सोचने में संग्रह, उपभोग और प्रदर्शन की निकृष्टता अनावश्यक मात्रा में घुस पड़ी है। व्यक्तित्व के इस स्तर को सर्वत्र

निन्दनीय ठहराया जायेगा और इस आधार पर उसके आगे बढ़ने को पीछे हटने के लिए विवश किया जाएगा।

प्रज्ञा युग में हर व्यक्ति सामाजिक नीति मर्यादाओं को महत्व देगा। कोई ऐसा काम न करेगा जिससे मानवी गरिमा एवं समाज व्यवस्था को आँच आती हो। शिष्टाचार, सौजन्य, सहयोग, ईमानदारी वचन का पालन, निश्छलता जैसी कसौटियों पर पारस्परिक व्यवहार खरा उतरना चाहिए। अनीति का न तो सहयोग किया जाय और न प्रत्यक्ष परोक्ष समर्थन। सामाजिक सुव्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि मूढ़ मान्यताओं का, अवांछनीय प्रचलनों का, हानिकारक कुरीतियों का विरोध किया जाय। इस प्रकार छल, शोषण उत्पीड़न जैसे अनाचारों से भी असहयोग, प्रतिरोध एवं संघर्ष का रुख अपनाया जाय। अनैतिक आचरण एवं अनुपयुक्त प्रचलनों को समान रूप से अहितकर माना जायेगा और उन्हें अपनाना तो दूर कोई उनका समर्थन तक करने को सहमत न होगा।

प्रज्ञा युग में शारीरिक और मानसिक व्याधिओं से सहज ही छुटकारा मिल जायेगा। क्योंकि लोग प्रकृति के अनुशासन में रहकर आहार-विहार का संयम बरतेंगे और अन्य प्राणियों की तरह अन्तःप्रेरणा का अनुशासन मानेंगे, फलतःन दुर्बलता सतायेगी न रुग्णता। असमय बुढ़ापा आने तथा अकाल मृत्यु से मरने का भी तब कोई कारण न रहेगा। मानसिक विक्षोभ, चिन्ता, भय, कृपणता, संकीर्णता, द्वेष, छल, कपट, लोभ, मोह, अहंकार जैसे मनोविकारों के कारण उत्पन्न होते हैं। उन्हीं के कारण लोग तनाव, असन्तुलन, सनक, मतिभ्रम, आवेश, उद्वेग, उन्माद, अर्ध-विक्षिप्तता, जैसे मानसिक रोगों से ग्रसित रहकर अन्तर्द्वन्द्वों की प्रताड़ना सहन करते हैं, ऐसे ही लोग भूत-पलीतों की तरह विक्षुब्ध पाए जाते हैं।

प्रज्ञा युग में सभी सन्तोषी, नीतिवान्, उदार एवं सरल-सौम्य जीवन पद्धति अपनायेंगे। मिल-बाँटकर खायेंगे- हँसती-हँसाती जिन्दगी जियेंगे। फलतः उन्हें हर परिस्थिति में आनन्द-उल्लास से भरा-पूरा पाया जायेगा। सभी के शरीर निरोग और मस्तिष्क शान्त-सन्तुष्ट पाये जायेंगे।

आदर्श सामाजिक व्यवस्था -

मनुष्य की संरचना सामाजिक प्राणी के रूप में हुई है। उसे जो कुछ

मिला है समाज के सहयोग एवं अनुदान द्वारा ही उपलब्ध हुआ है। अस्तु समाज को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने में भी उसका योगदान होना चाहिए। यह कार्य परिवार रूपी छोटे समाज से आरम्भ किया जाना चाहिए। आवश्यक नहीं कि अपने स्त्री-बच्चों को ही परिवार माना जाय। जिस समुदाय में खाने, सोने एवं मिलजुल कर रहने का प्रसंग बनता है, वह परिवार ही है।

इस समुदाय को अपने अवयवों की तरह माना जाय और उसे समाज का एक छोटा रूप मानकर उद्यान के माली की तरह सेवारत रहा जाय। हिलमिलकर रहने मिल बाँट-बाँटकर खाने तथा हँसती-हँसाती जिन्दगी जीने की नीति ही पारिवारिकता है। प्रज्ञा युग का हर मनुष्य शरीर निर्वाह की तरह पारिवारिकता में भी पूरा रस लेगा और प्रयत्नरत रहेगा।

धरती के उपार्जन शक्ति से कहीं अधिक इन दिनों जनसंख्या का भार बढ़ गया है। अब सन्तान भार बढ़ाने की कहीं कोई गुंजाइश नहीं रही। पिता पर अर्थ-संकट, माता पर रुग्णता और अकाल मृत्यु का आक्रमण, अभाव-ग्रस्त बालकों का दयनीय भविष्य, प्रस्तुत परिवार का हक बँटाना-राष्ट्रीय प्रगति और विश्व व्यवस्था में भयानक गतिरोध जैसे अनेकों अभिशाप इन दिनों सन्तान बढ़ाने की मूर्खता के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

कभी प्रजनन को सैभाग्य कहा और प्रोत्साहन दिया जाता रहा होगा, पर आज तो उसे विपत्ति को प्रत्यक्ष आमन्त्रण देना ही कहा जा सकता है। प्रज्ञायुग का हर विचारशील सन्तानोत्पादन से बचेगा और यदि वात्सल्य आनन्द लेने का मन होगा, तो किसी को गोद लेने की अपेक्षा अनेकों असहाय बालकों को पालने और सुयोग्य बनाने का भार ग्रहण करेगा।

त्रिवेणी संगम की तरह सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की समग्र साधना व्यक्ति, परिवार और समाज की त्रिविधि संरचना से ही सम्भव होती है। तीनों के बीच सघन तालमेल रहने और परस्पर सहयोगी बने रहने से ही सुख, शान्ति और प्रगति की भूमिका बनती है। इस तथ्य से अवगत होने के कारण प्रज्ञा युग का मनुष्य आज की तरह संकीर्ण स्वार्थपरता में ही निरत न रहेगा। वरन् व्यक्तित्व को प्रखर, प्रामाणिक एवं परिवार को सुसंस्कारी, स्वावलम्बी बनाने के लिए गम्भीरतापूर्वक ध्यान देगा। और उसके लिए भावभरी तत्परता के साथ प्रयत्न करेगा।

आधार बनेंगे श्रेष्ठ परिवार -

परिवार निर्माण के माध्यम से संचालक लोग संयमी, दूरदर्शी एवं उदारमना बनते हैं, साथ ही उस वातावरण में पलने वाले को नर-रत्न बनने का अवसर मिलेगा। व्यक्तित्व और परिवार को एक-दूसरे का अगले दिनों पूरक माना जाएगा और संयुक्त परिवार की वैज्ञानिक आचार संहिता विकसित होगी।

प्रज्ञा युग में हर व्यक्ति परिवार बसाने से पहले हजार बार विचार करेगा कि क्या उसमें साथी की प्रगति तथा सुविधा के लिए समुचित साधन जुटाने की सामर्थ्य है। क्या उसमें नये बालकों को सुसंस्कारी, सम्भ्रान्त एवं स्वावलम्बी नागरिक बना सकने की योग्यता है। यदि है तो समय एवं धन की कितनी मात्रा साथी तथा नई पीढ़ी के लिए लगा सकने की स्थिति बन सकती है। इन सभी बातों का गम्भीरतापूर्वक पर्यवेक्षण करने के उपरान्त ही विवाह का साहस किया जाया करेगा और सन्तान उत्पन्न करने से पूर्व हजार बार विचार किया जाया करेगा कि इस नई जिम्मेदारी को वहन करने के लिए पत्नी का स्वास्थ्य, पति का उपार्जन, घर का वातावरण उपयुक्त स्तर का है या नहीं। जितनी निश्चित स्थिति होगी उससे अधिक बड़ा कदम बढ़ाने का कोई दुस्साहस न करेगा। समुचित परिपालन की क्षमता न रहने पर भी बच्चे उत्पन्न करना अपना, पत्नी का, बच्चों का तथा समूचे राष्ट्र का भविष्य अंधकारमय बनाने वाला अभिशाप गिना जाएगा।

विवाह कामुकता की तृप्ति के लिए, रूप सौन्दर्य से खेलने के लिए नहीं-वरन् साथी को स्नेह, सहयोग, सम्मान देकर जीवन की अपूर्णता दूर करने एवं मिलजुलकर अधिक उच्चस्तरीय प्रगति करने की आदर्शवादिता से प्रेरित होकर ही किये जाया करेंगे।

एक दूसरे को निभाएँगे, सहिष्णु रहेंगे। मिलजुलकर किसी निर्णय पर पहुँचेंगे। अधिकार या आग्रह न थोपेंगे। मतभेद सामान्य हो और उनके कारण कोई विग्रह उत्पन्न न हो तो इतनी उदारता भी रहनी चाहिए कि भिन्न प्रकृति की भिन्नताओं को दरगुजर किया जाता रहे। इन दिनों स्त्रियों को दासी की तरह प्रयुक्त किया जाता है, यह प्रथा उलटकर उन्हें समान अधिकार

वाली सहयोगिनी का सम्मान भरा स्थान मिलेगा। शृंगार सज्जा को नारी की आन्तरिक हीनता तथा दुर्गति का चिह्न मानकर उसे अनुपयुक्त ठहराया जायेगा।

प्रज्ञा युग में हर गृहस्थ को धरती के स्वर्ग की तरह स्नेह, सद्भाव, एवं उत्साह, उल्लास से भरा-पूरा पाया जायेगा। क्योंकि उसके सभी सदस्य श्रमशीलता, सुव्यवस्था, मितव्ययिता, उदार-सहकारिता और सुसंस्कारी सज्जनता के पंचशीलों को सुख-शांति का आधारभूत कारण होने की बात पर सच्चे मन से विश्वास करेंगे। संयुक्त संस्था के रूप में सभी परिजन उसे समुन्नत बनाने में अपने-अपने हिस्से का अनुदान प्रस्तुत करने की बात सोचेंगे, न कि जिसके पल्ले जो पड़े उतना ले भागने का उचक्कापन बरतें। सभी मिलकर परिवार में सुव्यवस्था एवं सद्भावना का ऐसा वातावरण बनायेंगे जिसके द्वारा वर्तमान से भी अधिक प्रसन्नता का अनुभव करें और उसमें रहते, पलते हुए उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाएँ स्पष्ट रूप में झाँकती अनुभव करेंगे। ऐसे सुसंस्कृत परिवार ही नर-रत्नों की खदान बनते और उसके संचालकों को धन्य बनाते हैं।

परिवार के सदस्यों की शरीर यात्रा, अर्थ व्यवस्था, सुख-सुविधा एवं प्रगति-सुरक्षा का प्रबन्ध तो प्रज्ञा युग में भी चलेगा; पर एक विशेषता अनिवार्य रूप से जुड़ी रहेगी कि अधिकार घटाने और कर्त्तव्य पालन बढ़ाने की दृष्टि से हर सदस्य अपने-अपने ढंग से प्रयास करें और पिछड़ने में लज्जा अनुभव करें। परिवारों को सुसंस्कारिता प्रशिक्षण की पाठशाला बनाया जायेगा और उस कारखाने में ढल-ढलकर नर-रत्न निकला करेंगे। परिवार का सारा ढाँचा, कार्यक्रम एवं विधि-विधान इस प्रकार बनेगा कि उसके सभी सदस्यों को श्रमशीलता, मितव्ययिता, सुव्यवस्था, सज्जनता, सहकारिता जैसी सत्प्रवृत्तियों को स्वभाव में सम्मिलित करने का अवसर मिलता रहे। परिजन उदात्त दृष्टिकोंण, सघन आत्म-भाव, शालीन-सद्व्यवहार और सघन सहयोग देखकर ही परिवारों की सार्थकता और प्रगति का मूल्यांकन किया करेंगे।

न तो अभिभावक सन्तान से वंश चलने, पिण्डदान मिलने, सेवा सहायता पाने की अपेक्षा रखें और न सन्तान अपने अभिभावकों की छोड़ी

सम्पदा के सहारे गुलछर्रे उड़ाने की बात सोचें। दोनों के बीच विशुद्ध स्नेह सद्भाव का रिश्ता होगा और एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्य पालन करते हुए अपनी श्रद्धा शालीनता बढ़ाने का अभ्यास करेंगे। कन्या और पुत्र के बीच कहीं कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा। दोनों को समान स्नेह सम्मान एवं महत्त्व मिलेगा। सन्तानों के विवाह की तब तक जल्दी न की जायेगी जब तक वे स्वावलम्बी और नये गृहस्थ के अनेकानेक उत्तरदायित्वों का भार उठाने में समर्थ न हो जायें। सन्तान में अमीरों की महत्त्वाकांक्षा न भड़काई जाय। और न आलसी, विलासी,अहंकारी बनने जैसी सुविधा प्रदान की जाय। सुसंस्कारिता प्रदान करना ही सन्तान की सबसे बड़ी सेवा सहायता मानी जायेगी।

कुछ अपवादों को छोड़कर हर काम नियत समय पर पूरा करना,वस्तुओं को यथास्थान सुरक्षित एवं सुसज्जित रखना, फैशन को छछोरपन मानकर उससे बचना, दूर रहना, सादगी और स्वच्छता से सुरुचि का परिचय देना, बजट बनाकर आमदनी से कम खर्च करना और बचत की थोड़ी गुंजाइश रखना, एक-दूसरे का हाथ बँटाना, सहानुभूति और सहयोग का रुख रखना, नम्रता और मिठास भरा व्यवहार करना, चरणस्पर्श और अभिवादन का परिपालन, शिष्टाचार, अनुशासन का निर्वाह, स्वच्छता और सुसज्जा के लिए मिलजुलकर प्रयास करना, टूट-फूट की मरम्मत एक उपयोगी कला-कौशल के रूप में सीखना और प्रयुक्त करना, घर में जहाँ भी स्थान हो पुष्प, बेलें एवं शाक-भाजी उगाना जैसी प्रथा परम्परा घर में डालना जैसे प्रचलन अभ्यास में उतर सकें तो हर घर में स्वर्गीय वातावरण बन सकता है। रात्रि को कथा प्रवचन, प्रातः सायं पूजा आरती, सहगान कीर्तन जैसे धर्म-कृत्यों से भी परिवार को आस्थावान बनने का अवसर मिलता है।

जागेंगी सहकारी प्रवृत्तियाँ -

एक नया गृह-उद्योग "लार्जर फैमिली" सुसंचालित परिवार - के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। आज के संयुक्त परिवार तो अनुशासनहीनता और आचार-संहिता के अभाव में स्वार्थों की खींचतान के अखाड़े बन गये हैं। उत्तराधिकार की ललक तथा काम न करने में बड़प्पन

समझे जाने के कारण अनेकों विग्रह खड़े हो रहे हैं। जिस स्वरूप में संयुक्त परिवार इन दिनों चल रहे हैं वे अपनी प्रतिगामिता और अस्त-व्यस्तता के कारण अधिक दिन न चल सकेंगे और संयुक्त परिवार पद्धति पाश्चात्य देशों की तरह समाप्त हो जाने का संकट बढ़ेगा, पर उसे वैज्ञानिक, शास्त्रीय, व्यावहारिक एवं सुविधाजनक बनाने का दूसरा नया तरीका "लार्जर फैमिली" एक सहकारी संस्था के रूप में विकसित हो सकेगी। मोहल्ले के सभी काम मिल-जुलकर एक स्थान पर सम्पन्न हो। भोजन बनाना, कपड़े धोना, बच्चे खिलाना, साझे की दुकान, ट्यूशन, स्कूल, मनोरंजन आदि दैनिक जीवन की सभी आवश्यकताएँ अलग-अलग पूरी करते रहने के स्थान पर यदि संयुक्त रूप से पारस्परिक श्रम नियोजित करके पूरी की जाने लगें तो स्थान, समय, श्रम, पैसे की भी भारी बचत हो सकती है एवं अनेकों उपयोगी कार्य सम्पन्न होते रह सकते हैं। व्यक्तिगत सुविधा स्वतन्त्रता तो इसमें है ही, पारिवारिकता एवं सहकारिता का लाभ मिलता रहेगा। ऐसा प्रचलन चल पड़ने पर सारे समुदाय की शक्ति का अपव्यय बचेगा एवं उसे राष्ट्र के रचनात्मक कार्यों में लगाया जा सकेगा।

व्यक्ति, परिवार और समाज की ऐसी आदर्श संरचना को मात्र कल्पना या यूटोपिया न माना जाय, एक द्रष्टा की ऐसी भविष्यवाणी मानी जाय जो आगामी कुछ दशकों में ही साकार होकर रहेगी। इसे कौन सम्पन्न करेगा? यह प्रश्न गौण है। हर वह व्यक्ति जिसमें उच्चस्तरीय भावनाएँ बीज रूप में विद्यमान हैं, परोक्ष जगत् की सहायता से प्रज्ञायुग को अवतरित करने की भूमिका निभाने हेतु पुरुषार्थ करेगा। वे कषाय-कल्मष, लोभ-मोह के बन्धन जो उसे आज घेरे हैं, आने वाले कल में अपने पाश से मुक्त कर चुके होंगे। ऐसी पीढ़ी जन्म ले चुकी है एवं विकसित हो रही है। हमारी सूक्ष्मीकरण साधना उसे वैसा ही पोषण देने में नियोजित होगी जैसा अपेक्षित है।

गायत्री तीर्थ शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) 249411
फोन-01334-260602, 260403 फैक्स-260866
Email- shantikunj@awgp.org; www.awgp.org